होलकर हिन्दी ग्रंथमाला नं. ४१

ग्राम-सुधार

प्रकाशक—

श्री मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति,

इन्दौर.

होलकर हिन्दी ग्रन्थ माला नं. ४१

ग्राम सुधार

लेखक—

पं. गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इन्द्र' विद्यावाचस्पति.

आगर मालवा [मध्य-भारत]

प्रकाशक—

श्री मध्य-भारत हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर.

प्रथमावृत्ति १००० } १९३३ { मूल्य १)

पं० गणेशदत्तजी गौड़ लिखित ग्राम-सुधार की

भूमिका.

भारतीय देहातों का संगठन कर जनता की माली हालत को सुधारने की ओर आज तक बहुत कम संगठित प्रयत्न किए गये हैं। भारत की राष्ट्रीय महासभा—कांग्रेस, को इसकी आवश्यकता का अनुभव हो गया है और इस ओर प्रयत्न भी किए गए हैं। स्वर्गीय देशबन्धु श्री चित्तरंजनदास ने बंगाल में ग्राम-संगठन का कार्य प्रारम्भ भी कर दिया था; राजनैतिक आन्दोलन के विशेष जोर पकड़ लेने के कारण यह कार्य अब शिथिल पड़ गया है।

भारत में कई ऐसे राजनैतिक दल मौजूद हैं, जो कांगरेस की कार्य-पद्धति को देश के लिये घातक समझते हैं और यही कारण है कि कई प्रसिद्ध नेता और विद्वान एक प्रकार से तटस्थ रहना ही पसन्द करते हैं। यदि ये सज्जन ग्राम-संगठन का कार्य-भार ग्रहण कर देहाती जनता की दुरवस्था को दूर करने के लिए कटि-बद्ध हो जायँ, तो इने-गिने वर्षों में ही देहातों की काया पलट सकती है।

देशी राज्यों की प्रजा, कई कारणों से, राजनैतिक आन्दोलन में भाग नहीं ले सकती है। और हमारी सम्मति में, वर्त-

मान परिस्थिति में, देशी राज्यों को राजनैतिक आन्दोलन से दूर रखना ही श्रेयस्कर है। ग्राम-सुधार और ग्राम-संगठन का कार्य राजनैतिक आन्दोलन नहीं है। अतएव सभी लोग इसमें योग दे सकते हैं। यदि देशी राज्यों में भी ग्राम-संगठन और ग्राम-सुधार का कार्य प्रारम्भ किया जाय, तो राजा और प्रजा, दोनों को लाभ हो सकता है।

जापान, भारत का पड़ौसी है। जापान ने ग्राम-संगठन द्वारा गजब की उन्नति करली है। ग्राम-संगठन की सुविधा के लिये जापान के ७० हजार गाँव १२ हजार संघों में विभाजित किए गए हैं। प्रत्येक ग्राम या ग्राम-संघ में ग्राम-सभा स्थापित की गई है, जो खेती की पैदावार बढ़ाने, गृह-शिल्प और गृह-उद्योग को तरक्की देने, गाँव के लोगों की माली हालत सुधारने, नवीन शिल्प-धंधे शुरू करने, शिक्षा-प्रचार आदि कार्य करती हैं। कार्य-कारिणी कमिटी ग्राम या ग्राम-संघ के प्रत्येक व्यक्ति का सहयोग प्राप्त करने की पूरी-पूरी कोशिश करती है। भारत में भी जापान का अनुकरण कर अच्छी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश की राष्ट्र-भाषा में ग्राम-संगठन और ग्राम-सुधार सम्बन्धी साहित्य का अभाव बहुत खटकता है। राष्ट्र-भाषा के ख्यात नामा लेखकों, अनुभवी नेताओं और सर्व-साधन-सम्पन्न प्रकाशकों का ध्यान इस ओर

आकर्षित ही नहीं हुआ है। हर्ष का विषय है कि, श्री गौड़जी ने इस अभाव की पूर्ति का अँशतः प्रयत्न किया है और मध्य भारत की एक प्रसिद्ध साहित्यिक-संस्था ने यह पुस्तक हिन्दी संसार को भेंट कर अन्य प्रकाशकों के सामने आदर्श उपस्थित करने का श्रेय प्राप्त किया हैं।

ग्राम-संगठन और ग्राम-सुधार जैसे विषयों पर कुछ लिखना सहल नहीं है। इस विषय पर ग्रंथ लिखने का अधि-कारी वही व्यक्ति हो सकता हैं, जिसने देहातों में बरसों रह कर देहातियों की रहन-सहन आदि का खूब अध्ययन किया है। श्री गौड़जी ने अपने बरसों के अनुभव, अध्ययन और निरीक्षण के आधार पर ही इस ग्रन्थ की रचना की है। ग्राम-सुधार के प्रत्येक पहलू पर गंभीरता पूर्वक विवेचन करने में आपको अच्छी सफलता मिली है। और यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि ग्राम-सुधार का कार्य करने वाले सज्जनों को इस पुस्तक से अच्छी सहायता मिल सकती है।

भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जुदे-जुदे तरीके से—ग्राम-संगठन का कार्य किया जा रहा है। यदि विद्वान् लेखक भारत के भिन्न प्रांतों में कार्य करने वाली संस्थाओं के कार्यों का विवेचन भी इस ग्रंथ में जोड़ देते, तो पुस्तक की उपयो-गिता और महत्व और भी बढ़ जाता।

यह एक मानी हुई बात है कि महिला-समाज की सक्रिय सहायता के बिना किसी काम में चिर सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। यदि ग्राम-सुधार और ग्राम-संगठन के कार्य में, भारत के महिला-समाज का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर लिया जाय तो कुछ ही वर्षों में बहुत कुछ किया जा सकता है। बंगाल की महिलाओं ने इस क्षेत्र में अच्छा काम किया है। श्री सरोज नलिनीदत्त मेमोरियल एसोसिएशन बंगाल की एक प्रख्यात और सुसंगठित संस्था है। राजा और प्रजा, दोनों ने ही इसे खूब अपनाया है। गृह-शिल्प और गृह-व्यवसायों की स्थापना में महिला-समितियों का खूब हाथ रहा है। इन के कार्यों को देखकर कहना पड़ता है कि राष्ट्रीय-जीवन के लिए वे दर असल में वास्तविक-शिक्षा-केंद्र हैं। दिल्ली की महिला-शिक्षा-समिति भी अच्छा कार्य कर रही है। इन संस्थाओं का इतिहास और कार्य-पद्धति भावी कार्य-कर्त्ताओं के लिए श्रेष्ठ मार्ग-दर्शक हो सकती थी। फिर भी, इतना तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि उक्त त्रुटियों के रहते हुए भी, यह पुस्तक अपने विषय की एक अच्छी पुस्तक है।

वर्ष प्रतिपदा १९८९
टोंकी-होलकर राज्य

विनीत—
शंकरराव जोशी,
डिप्-एजी, एफ. आर. एच. एस.

विषय सूची

विषय		पृष्ठ
१	ग्राम-सुधार	१
२	ग्राम-सुधार की आवश्यकता	७
३	ग्राम्य-शिक्षा	१७
४	रात्रि पाठशाला	३२
५	स्त्री शिक्षा	३४
६	उद्योग धन्धे	३६
७	पशु पालन	५४
८	खाद	८२
९	सहयोग समिति	११६
१०	सफाई	१२२
११	खुराक	१३८
१२	मुकद्दमेबाजी	१५३
१३	नशेबाजी	१६२
१४	ग्राम्य-वेषभूषा	१८९
१५	ग्राम्य-धर्म	१९२
१६	ग्राम-सभा	२०१
१७	डेयरी	२१३

ग्राम सुधार

"अरण्यानि अरण्यानि असौ या प्रेवनश्यासि।
कथा ग्रामं न पृच्छसि नत्वा भीरिव विन्दतीं।"

ऋग्वेद का उक्त मंत्र हमें ग्रामों की याद दिलाता है। यह बताता है कि, बड़े बड़े जंगलों में जहां भय की आशंका सदैव बनी रहती है न जाकर तू गाँवों की ओर क्यों नहीं जाता? अर्थात् जङ्गलों में घूमना उतना आवश्यक नहीं है जितना कि गाँवों में जाना। वे लोग जो गृहाश्रम पूर्ण करके वाणप्रस्थी होते हैं उन्हें वन में न जाकर गाँवों में निवास करना चाहिए। यदि गाँव की बस्ती में रहना ठीक न समझा जाय तो गाँव के बाहर ही एक उत्तम रम्य स्थान पर अपनी कुटी बनाकर रहा जाय। और अपने आवश्यकीय धार्मिक-कृत्यों के पश्चात् गाँव के रहने वालों में अपना प्रचार कार्य करे। अस्तु—

अभी वे दिन दूर हैं जब कि हमारे ग्रामों के शुभाकांक्षी त्यागी लोग ग्राम प्रस्थी बनकर उनका सुधार करेंगे । भारतीय अधिकांश साधु समाज, अथवा-भिक्षा-जीवी लोग अपने कर्त्तव्य को भुला बैठे हैं। यह नहीं कि साधु लोग अथवा फकीर गाँवों तक नहीं पहुँचते हों । दान लेकर पेट भरने वाले हजारों लोग अपनी जिन्दगी गाँवों पर बसर करते हैं किन्तु उसके बदले वे ग्रामों के प्रति कुछ भी उपकार नहीं करते बल्कि अपकार ही करते हैं । सच पूछा जाय तो आलस्य और मादक-द्रव्यों का प्रचार इन्हीं लोगों के द्वारा गाँवों में होता है । अस्तु—

लगभग सात लाख गाँवों से समाकीर्ण इस भारत में, ग्रामों की ओर किसी का भी ध्यान नहीं जाता । भारत का सच्चा रूप नगर नहीं, कस्बे नहीं बल्कि ग्राम है । महल नहीं, हवेलियाँ नहीं, अट्टालिकाएँ नहीं प्रत्युत फूस के झोंपड़े हैं । बाबू नहीं, बैरिस्टर नहीं, अधिकारी नहीं, धनी नहीं,—गरीब वस्त्रहीन, कृषगात्र कृषक हैं । इतना होते हुए भी आज तक भारत के सच्चे रूप को देखने का कोई भी सुवन प्रयत्न नहीं हो रहा है । जहां देखिए तहाँ बड़े बड़े शहरों की चर्चा, और उनके रहने वाले बड़े लोगों की बात चीत सुनाई देती है । इन देहाती लोगों की ओर कोई नजर उठाकर देखता तक नहीं । अर्थात् हम अपने २७ करोड़ भारतीय-भाइयों के दुःख सुख से अपरिचित हैं ।

भारतवासियों का एक बड़ा भाग—लगभग $\frac{६}{७}$-भाग बिलकुल ही बुरी दशा में है। उसे अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं—हिताहित की पहिचान नहीं—अपने सम्मान अथवा अधिकार का पता नहीं। शहरों के रहने वाले लगभग ४।५ करोड़ व्यक्ति भारत की उन्नति के सम्बन्ध में चिन्तित हैं। इनमें भी लाखों ग्रामीणों से भी अबोध और निकम्मे हैं। वे भारतोन्नति में बाधक बने हुए हैं। भला, ऐसी विकट परिस्थिति में हमें ग्राम सुधार सम्बन्ध में बेपर्वाह रहना, कितनी घातक भूल है? उन ग्रामीण भाइयों की ओर, जिनके कारण हमारी शानो शौकत ठाठ बाठ और आनन्द हैं उदासीन भाव रखना अब ठीक नहीं है।

शहरों की जड़ ग्राम हैं। नगरों की मण्डियाँ ग्रामोत्पन्न पदार्थों से ही पूरित हैं। हमारा रोजगार धन्धा उन्हीं पर मुनहसिर है। हमारे ऐशो आराम के साधन ग्राम ही हैं। फिर उनकी ओर से उदासीनता उन्हें तो घातक है ही साथ ही नगरों के लिए भी है। इसलिए हमें अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए भारत को पुनः पूर्व पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए, अपने तन मन और धन की रक्षा के लिए ग्राम-सुधार आवश्यक है। ग्रामों के सुधार में ही भारत का सुधार निहित है। उनके नाश में भारत का भी नाश है।

हम देखते हैं ग्रामवासी अन्न उत्पन्न करते हैं, परंतु वे भर पेट अन्न बारहों महीने नहीं पाते। राबड़ी पीकर अपने दिन टेर करते हैं। फसल निकल जाने के कुछ महीनों बाद ही शहरों से अन्न खरीद कर अपना पेट भरते हैं। वह भी उधार लाकर! कैसी दयनीय दशा है। वे कपास उत्पन्न करते हैं परन्तु उनके शरीर पर कपड़े नहीं। फटे चिथड़ों में अपने शरीर को छुपाए फिरते हैं—उन्हें लज्जा निवारण तक के लिए वस्त्र अप्राप्य हैं। बिनौले-कपासियों के लिए शहरों में जाना पड़ता है। बीज तक घर में नहीं मिलता। गन्ने की खेती करते हैं परन्तु इच्छा भर गुड़-शक्कर कभी नहीं खाते। दूध घी गाँवों में पैदा होता है, परन्तु विषम दरिद्रता के कारण बाजारों में बेचना पड़ता है। छोटे छोटे बच्चों तक को दूध मिलता नहीं! छाछ पर प्रसन्न रहते हैं। वह भी सब को नहीं। तात्पर्य्य यह कि सभी वस्तुएँ ग्रामों में सुलभ हैं—वहीं उत्पन्न होती हैं किंतु फिर भी वे लोग पर मुखापेक्षी बन जाते हैं। कैसी करुणोत्पादक स्थिति है। इन सब का कारण एक मात्र ग्रामवासियों की भूलें हैं। जिन्हें वे अन्ध परम्परागत अथवा अज्ञान के कारण निरन्तर करते रहते हैं। यदि उनकी भूलें हम लोग उन्हें समझा देवें तो शीघ्र ही ग्रामों का सुधार हो सकता है। इस प्रकार ग्राम सुधार में नगरों को भी विशेष लाभ होगा, और देश तो पुनः सुखी, समृद्ध और फला फूला नजर आने लगेगा।

हम लोगों की एक आदत सी हो गई है कि हम ग्रामों को तथा ग्राम निवासियों को तुच्छ दृष्टि स देखते हैं, उन्हें हीन दीन और मूर्ख समझते हैं, किंतु इसमें उन गरीबों का दोष नहीं है। वे तो मनुष्य हैं, हमारे समान ही समझदार, बुद्धिमान और शिक्षित हो सकते हैं किन्तु वर्त्तमान परिस्थिति ऐसी बेतुकी है कि हम हमारे भाइयों का हितसाधन करने तक को असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं। परिणाम इसका जो कुछ भी है वह सामने है। पृथ्वी के समस्त देशों की नजर में भारत तुच्छ बना हुआ है। वह भारत जिसकी विजय वैजयन्ती किसी समय सारे भूमण्डल पर फहराती थी, जिसकी यशो दुदुंभि से विश्व निनादित था, जिसके विद्या-प्रकाश से अखिल-भूतल आलोकित था, आज केवल ग्राम-सुधार के अभाव में अन्य देशों की अपेक्षा हीन समझा जाता है !! यह हम भारतवासियों के लिए कितनी लज्जा भरी बात है !

आज भारत के सभी नेता एक स्वर से ग्राम-सुधार की पुकार मचा रहे हैं। क्यों ? इसी लिये कि 'स्वातंत्र्य संग्राम का शकट' अब बिना ग्राम-सुधार के चल नहीं सकता। महात्मा श्री गान्धी जी महाराज ग्रामवासी भाइयों के सम्बन्ध में तथा ग्राम सुधार सम्बन्ध में समय समय पर कितना जोर देते हैं और कितना आवश्यक समझते हैं, यह हम लोगों से छुपा नहीं है। बात तो यह है कि बिना ग्राम-सुधार के भारत

का उद्धार अब असंभव है अतएव हमें शीघ्र ही इस सम्बन्ध में सचेष्ट एवं सजग होने की जरूरत है।

समाज-सुधारकों, देशभक्तों, धर्म प्रचारकों, साधु संन्यासियों, व्याख्याताओं, पत्र सम्पादकों और लेखकों को अब ग्राम-सुधार में अपनी शक्ति एकत्र कर देनी चाहिए। लोगों को गाँवों में पहुँच कर कार्य आरंभ कर देना चाहिए। हमारे सुधारक, प्रचारक और व्याख्याता नगरों के सैर सपाटे से ही प्रसन्न हैं क्यों कि वहां उन्हें सब आवश्यकीय सामग्री सुलभ है, किन्तु गाँवों की ओर जाने में घबराते हैं, वहाँ तक न तो रेलें हैं, न मोटरें हैं, न सड़कें हैं न यात्रा की अन्य सुविधाएँ हैं। आदतें आराम तलब हो रही हैं; ग्रामों में कष्ट और असुविधाएँ हैं। ये सब बातें हैं किन्तु एक बात ग्रामों में सब से उत्तम है और वह यह है कि, प्रचारकों को क्षेत्र सब से उत्तम मिलेगा। नगरों और कस्बों के रहने वाले लोगों की तरह चालाक और जिन पर प्रभाव नहीं होता ऐसे लोग वहां नहीं मिलेंगे। ग्रामों में मिलेंगे, सरल, सज्जन, भावुक, सीधे, भोले जिज्ञासु और श्रद्धालु लोग। वे आपका सम्मान करेंगे उनके हितैषी सिद्ध होने पर आप को देवता की तरह पूजेंगे। सदा आप के रहेंगे और आप की बातों को मान कर अपना सुधार करेंगे।

सारांश यह कि जब तक हम लोग ग्रामीण दशा न सुधारेंगे और देहाती भाइयों को अपने बराबरी का नहीं बना लेंगे, तब तक हम परतंत्रता से, कदापि मुक्त नहीं हो सकते। यह ध्रुव है, सत्य है, अटल है। बिना ग्राम-सुधार के तथा ग्राम-संगठन के हमारा स्वातंत्र्य-युद्ध सफल नहीं हो सकता। यही कारण है कि इन दिनों ग्राम-सुधार के लिए चारों ओर से आवाज आ रही। बिना ग्राम-संगठन के हमारी गाड़ी अब आगे नहीं बढ़ सकेगी। हर्ष का विषय है कि अब बड़े लोगों की दृष्टि छोटों की दशा पर पड़ी है।

ग्राम-सुधार की आवश्यकता

भारतवर्ष में अधिक संख्या गांवों की है। शहर और कस्बे यहां उतने नहीं हैं, जितने कि दूसरे देशों में हैं। हमारा देश तो गांवों ही का देश है। यह कृषि-प्रधान देश है। यहां सिर्फ २३१६ शहर हैं। जिनमें ३,२४,७५,२७६ मनुष्य रहते हैं, परन्तु ६,८५,६६५ गांव हैं, जिनमें २८,६४,६७,२०४ गरीब देहाती मनुष्य निवास करते हैं। अर्थात् फी सैकड़ा ९० मनुष्य गांवों में रहते हैं। इससे कहा जा सकता है कि भारत का सच्चा रूप तो गांव और गांव के रहने वाले हैं, और दुःख

की बात है कि वही हिस्सा दुर्दशाग्रस्त और संकटापन्न है। यदि हमारे ग्रामों का सुधार हो जाय तो देश का भी शीघ्र ही बेड़ा पार हो सकता है। पूज्य महात्मा गांधीजी का भी यही कहना है कि:—

"जितनी आशाएँ मुझे ग्रामीणों से है, उतनी नागरिकों से नहीं।"—यह बिलकुल सत्य है। यदि अठाइस करोड़ मनुष्य गांवों के रहने वाले सुधर जावें और वे अपने कर्तव्य तथा अधिकारों को समझने लगें तो शहरों के रहने वाले केवल ३। करोड़ मनुष्य न भी सुधरें तो कुछ पर्वाह नहीं। इसलिये ग्राम-सुधार की अत्यन्त ही आवश्यकता है। यदि ग्राम-सुधार का प्रयत्न किया जायगा तो उनके शीघ्र सुधार हो जाने की आशा भी है। क्योंकि शहरों के लोगों को सुधार में जो कठिनाइयाँ आगे अड़ती हैं; वह वहां नहीं होंगी। पुज्य महात्मा गांधी जी का कहना है कि—"गांवों के रहने वाले सरल स्वभाव, छल-कपट-रहित, भावुक होते हैं। वह थोड़े ही में समझ सकते हैं। शहरों के रहने वालों की अपेक्षा मुझे इनमें अधिक श्रद्धा और विश्वास है।" वास्तव में यदि गांव सुधर जावें तो भारत का बहुत-कुछ भला हो सकता है।

शहरों की अपेक्षा गांव अच्छे होते हैं। स्वर्ग और नर्क में जितना अंतर होता है, उतना ही गांवों और शहरों में भेद

है। शहरों के रहने वाले बदबू और अशुद्ध हवा में निवास करते हैं। परन्तु गांवों में हमेशा साफ आरोग्यवर्धक वायु प्राप्त होता है। शहरों में व्यभिचार की अधिकता होती है, परन्तु गांवों में वह बात नहीं है। शहर के लोग चालाक, बदमाश, कपटी, छली, स्वार्थी होते हैं, परन्तु गांवों के लोग सीधे-साधे, सरल-स्वभाव भोले और उतने स्वार्थी नहीं होते। शहरों में दिखावा बहुत होता है और असलियत कम होती है, किन्तु गांवों में इतना ढोंग-ढकोसला नहीं पाया जाता। हमारे गांवों में अब भी भारत की पुरानी झलक दिखाई पड़ती है, वहां सादगी है, श्रद्धा है, विश्वास है, प्रेम है, प्राचीनता है, इच्छा है। सारांश यह कि गांवों में सुधार के लिये ज्यादा सिरपच्ची अथवा मेहनत करने की जरूरत नहीं है। उनमें जो कुछ भी दोष पैदा हो गये हैं, उन्हें हटा देने की जरूरत है। बस इसी से उनका सुधार हो जायगा। देहाती लोग समझने और अपने दोषों को हटाने के लिए तैयार हैं, बशर्ते कि उन्हें कोई समझाने वाला हो।

गांवों में ज्यादातर किसान लोग ही रहते हैं। सभी लोगों का धन्धा खेती होता है। वैसे तो गांवों में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र सभी वर्ण के लोग रहते हैं, परन्तु खेती सब करते हैं। आज ८० फी सैकड़ा भारतवासी खेती का काम करते हैं। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तान की जमीन का अधिक भाग खेती के लिये बड़ा ही उपयोगी है। दूसरे देशों

में इतनी अच्छी जमीन नहीं है। इसी कारण भारत में खेती और खेती करने वालों की बड़ी इज्जत है। इसीलिये यह कहावत प्रचलित है कि "उत्तम खेती मध्यम बान"। यहां जिसे कुछ रोजगार धन्धा नहीं दिखाई पड़ता; वह खेती करने लगता है अर्थात् भारत में खेती ही एक उत्तम व्यवसाय है। यहां खेती करने वालों की संख्या दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है। सम्वत् सन १९८१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार फी सैकड़ा ६२ किसान थे, परन्तु आज फी सैकड़ा ८० होगये। इन अंकों से स्पष्ट होता है कि गांव बस रहे हैं और शहर उजड़ रहे हैं।

आज हमारे देश की आर्थिक दशा कितनी खराब हो गई है, इसे सब कोई जानता है। सम्पत्ति शास्त्र में "जमीन" सर्व श्रेष्ठ सम्पत्ति मानी गई है। क्योंकि खाने पीने की और यहां तक कि वस्त्रों के लिये कपास आदि सामग्री भी हमें जमीन ही से प्राप्त होती है। इसलिये जमीन का महत्व बहुत ज्यादा माना गया है। इसे 'पृथ्वी माता' कहते हैं। जमीन से अन्न आदि सामग्री उत्पन्न करने वालों को 'जमींदार' कहते हैं। ये जमींदार प्रायः गांवों में ही रहते हैं। बड़े-बड़े शहरों में जमींदार नहीं मिलते—वहां तो उनके परिश्रम की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाने वाले आदमी रहते हैं। गरीबों की वहां गुजर नहीं। यह लगभग २८॥ करोड़ खेती करने वाले गरीब जमींदार किसान छोटे २ गांवों में निवास करते हैं। ये लोग रात-दिन अपना पसीना बहाकर, और बाल बच्चों सहित घोर परिश्रम करने

पर भी भर पेट अन्न नहीं पाते। खैर मनुष्य को छोड़ दीजिये —यहां तो किसानों के पशुओं तक के लिये भर पेट घास नहीं मिलती! हिन्दुस्तान की जन संख्या ३३ करोड़ है, जिसमें से यदि किसानों की संख्या घटा दी जाय तो बाकी ३। करोड़ के लगभग ऐसे लोग मिलेंगे जो खेती नहीं करते। ये लोग व्यापार करते हैं, नौकरी करते हैं और इनमें ही से लगभग ६० लाख के भीख मांगते हैं। हमारे देश के २८॥ करोड़ आदमी खेती के काम में लगे रहने पर भी अपना और अपने से बाकी बचे ३। करोड़ मनुष्यों का पेट भरने योग्य अन्न उत्पन्न नहीं कर सकते। इससे बढ़कर हमारे किसानों की-बिचारे गांवों के रहने वालों की और क्या दुर्गति हो सकती है? अब किसान बढ़ाने से यह सवाल हल नहीं होगा। क्योंकि जोतने योग्य भूमि सब जोती जा चुकी है। भारत में मनुष्यों की संख्या दिन ब दिन बढ़ रही है। और अत्यन्त गरीबी के कारण जमीन में खाद वगैरह न दिये जाने से जमीन की उपज घटती जा रही है। इस समय यह एक बड़ा ही जटिल प्रश्न है। यदि इसमें सुधार नहीं किया जायगा तो एक अत्यन्त भयानक दशा पैदा हो जाने का डर है।

अब भारत में किसानों की वृद्धि रोकने की जरूरत है, क्योंकि हमारे यहां की खेती का औसत फी आदमी एक एकड़ रह गया है। एक एकड़ जमीन लगभग ३ बीघे के होती है। अगर अब लोग खेती की तरफ बढ़ें तो कुछ भी

लाभ नहीं होगा बल्कि मँहगाई बढ़ जावेगी। कारण कि अब ऐसी नई जमीन भारत में नहीं है जिसे तोड़कर खेती के काम में लाई जा सके। जितनी जमीन खेती के काम में लाई जा सकती थी, लाई जा चुकी है। यहां तक कि चरागाह-गोचर-भूमि तक भी जोती जाने लगी।

"हिन्दुस्तान में किसानों की वृद्धि क्यों हुई?" इस सवाल को भी हल करने की आवश्यकता है। बेकारी के बढ़ने से किसान लोग भी बढ़ गये और बेकारी बढ़ने का मुख्य कारण यहां के उद्योग धन्धों की बरबादी है। मिलों, कल कारखानों के चालू हो जाने से लोगों का उद्योग नष्ट हो गया और वे लोग खेती की तरफ झुक पड़े। जिस काम को पहिले १०, १५ आदमी करते थे उसी को मिलें या मशीनें एक आदमी की सहायता से सहज ही में कर सकती हैं। जब १५ आदमी का काम एक आदमी करने लगा तो १४ आदमी बेकार हो गये। इन बेकारों ने खेती आरम्भ करदी। बस इस प्रकार यहां किसान बढ़ गये। पहिले गांवों में कपड़ा बुनने का काम बहुतायत से होता था, परन्तु मिलों के खुल जाने से वह काम बिल्कुल चौपट हो गया। हम उदाहरण के लिये गन्ने पेरने और गुड़ व शक्कर तैयार करने का काम लेते हैं। वस्त्र बुनने के काम का उदाहरण देने से लोग शायद यह समझ जावें कि इस पुस्तक का लेखक खादी भक्त होने के कारण अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये ऐसा कर रहा है;

इसलिए हम गन्ने के व्यवसाय पर यहां उदाहरण के लिये थोड़ा-सा विचार करेंगे।

"हिन्दुस्तान में चालीस लाख एकड़ जमीन गन्ना (ईख) बोने के काम में लाई जाती है। इसमें से १० लाख एकड़ ऐसी निकाल दी जाय, जिसमें ईख सूख जाती है, या पशु चर जाते हैं अथवा बीज के लिये रखी जाती है। ३० लाख एकड़ जमिन के गन्ने से शक्कर या गुड़ बनाया जाता है। ५०० घोड़े की ताकत का एंजिन चलाकर शक्कर बनाने का कारखाना खोला जाय तो एक मिल में मशिनरी औजार वगैरा सब कुछ १० लाख रुपये से कम खर्च में नहीं हो सकेंगे। यह मिल चौबीसों घंटे चलाकर प्रतिदिन दस हजार मन ईख पेर सकेगी। इसमें ३०० मजदूर नित्य काम करेंगे। यदि १० लाख मन ईख अर्थात् २० एकड़ जमीन की पैदावार एक मिल नित्य पेरेगी तो छः महीने चलकर ३६०० एकड़ जमीन की ईख पेर सकेगी। इसलिये ३० लाख एकड़ की ईख पेरने के लिये ८३३ मिलें चलानी होंगी। इनका मूल्य १० लाख फी मिल के हिसाब से ८३,३०,००,००० रुपये होंगे और इनमें २,४९,९०० आदमी काम करेंगे।

अब देशी तरीके से इसका हिसाब देखिये। एक कोल्हू में १६ मन गन्ना पेरा जाता है अर्थात् ५०० मन ईख को एक कोल्हू एक महीने में पेर सकेगा। यदि एक कोल्हू ६ महीने तक चला तो ३ हजार मन ईख अर्थात् ६ एकड़

जमीन की उपज को पेर डालेगा। इसलिये ३० लाख की ईख को पेरने के लिये ५ लाख कोल्हुओं की जरूरत होगी। एक कोल्हू पर ५ आदमी लगते हैं--इस हिसाब से २५ लाख आदमी मजदूरी पा सकेंगे। ५ लाख कोल्हूओं को चलाने के लिये १० लाख बैल पाले जावेंगे फिर इसका गुड़ बनाने के लिये भी आदमियों की जरूरत होगी। ३० लाख एकड़ भूमि से ३० करोड़ मन गुड़ पैदा होगा। इसके शक्कर बनाने के लिये ५० हजार देशी कारखाने चलाये जावेंगे। एक कारखाने में २० मनुष्य प्रतिदिन काम करेंगे तो ५० हजार में १० लाख मनुष्य रोटी दाल पा सकेंगे।

सारांश यह है कि देशी तरीके से यदि शक्कर बनायी जावेगी तो ३५ लाख आदमियों की परवरिश होगी, और यदि मिलों से शक्कर तैयार की जावेगी तो सिर्फ २॥ लाख मनुष्य ही पेट भर सकेंगे। साथ ही देशी पद्धति से १० लाख बैल भी सुरक्षित रह सकेंगे। और विदेशी तरीके से ८३ करोड़ ३० लाख रुपया हम कल कांटे खरीदने में दूसरे देशों को भेट करदेंगे। इन सब बातों से यह साफ होजाता है कि हमारे गांवों की बरबादी के लिये भारत में कल कारखाने भी एक हानिकर चीज साबित हुए हैं। मिलों और कलों से ग्रामीण लोग कंगाल होते जा रहे हैं तथा पूंजी वालों की पूंजी बढ़ती जारही है, इसलिये मजदूरों और किसानों की भूख मिटाने के लिये हमें बहुत कुछ विचारने की जरूरत है। अमेरिका के मशहूर

मोटर व्यापारी मिस्टर हेनरी फोर्ड ने बड़े ही अच्छे शब्दों में समझाया है। उनका कहना है किः—

हम को अब बड़े-बड़े कल-कारखानों की जगह छोटे-छोटे कारखानों की जरूरत है, और जहां तक हो सके कच्चा और पक्का माल एक ही जगह तैयार हो। अब वह समय आगया है कि इस सवाल को संसार हल करने के लिए विवश होगा। (We need instead of mammoth mills a multitude of smaller mills wherever it is possible. The section that produce raw materials ought to produce the finished good, wherever possible a policy of decentralisation in Industries ought to be followed.) —(Henry Ford.)

तात्पर्य यह है कि अब हमें अपने घरू धन्धों को सम्भालना पड़ेगा वर्ना बहुत ही बुरी हालत हो जावेगी। जब से हमने अपने गृह उद्योग को तिलाञ्जलि दी तभी से हमारी खराब हालत हो गई, इसलिए गृह-उद्योग (Cottage Industry) को अपनाने की अत्यंत आवश्यकता है। हमारा यहां यह मतलब हरगिज नहीं है कि भारत में कल-कारखाने कतई न हों। कल-कारखाने खुलने चाहिए, परन्तु वे हमारी छोटी मोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए न हों। जब हम अपने पैरों आप खड़ा होना सीखलें तभी कल-कारखाने खोलें। जब तक दूसरों के मुंह की तरफ ताकना पड़े तब तक इनसे सिवाय नुकसान के फायदा नहीं हो सकता। आज हम अपने भोजनों और वस्त्रों के लिए भी दूसरों का मुँह देखा करते हैं।

हमें अपना वस्त्र-व्यवसाय त्यागना पड़ा। हमें आज इस महान् दुर्दशा में पड़ना पड़ा कि सब कुछ हम दूसरे देशों से लेकर काम चलाते हैं। वस्त्र हम विलायत से लेते हैं, शक्कर हम विलायती खाते हैं, घी भी विलायत से आने लगा, अब आटा भी आ पहुँचा है! कहिये इससे अधिक देश की बुरी हालत और क्या होगी? इतने पर भी हम अपनी हालत न सुधारें तो हम से बढ़कर मूर्ख और कोई नहीं हो सकता।

हमारे देश में सामाजिक, धार्मिक और नैतिक विविध दोष पैदा होगये हैं। यदि यहां उन सब का उल्लेख और मिलान किया जाय तो और भी भयानक अवस्था मालूम होने लगेगी। इतने पर भी देश में नये नये रोगों की वृद्धि हो रही है। हमें प्रत्येक बात में सुधार करने की जरूरत है। और देश का सच्चा सुधार ग्रामों के सुधार में है। जब तक इस गांवड़ों के मुल्क, हिन्दुस्थान में गांवों की बिगड़ी हालत ठीक नहीं की जायगी तब तक भारत की उन्नति होना अत्यन्त ही कठिन कार्य है। खेद है कि गांवों का खास वैभव अन्न भी भारत-वासियों के लिए पूरा नहीं पड़ता। रंगून का चावल तो यहां आता ही है, परन्तु आस्ट्रेलिया आदि देशों से गेहूँ तथा दूसरे देशों से मकई आदि धान्य यहां आते हैं।

तात्पर्य यह कि भारत के ग्रामों की हालत बहुत ही खराब है और अपनी उन्नति के लिये उनके सुधार की जरूरत है। अब हम इसी पर आगे लिखेंगे।

ग्राम्य-शिक्षा

गांव ही भारत का सच्चा रूप है। गांव के रहने वाले ही भारत के सच्चे भारतीय अधिवासी हैं। भारतीय संस्कृति का सच्चा स्वरूप "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" के रूप में हमें गांवों ही में दीख पड़ता है। पहिले हमारे बड़े बूढ़े गांवों में ही रह-कर बड़े ही सुखी, धनी और ऐश्वर्य सम्पन्न थे। भारत ने यदि पहिले कभी अपनी महत्ता का झंडा सारे भूमण्डल पर फहराया था तो वह गांवों ही की बदौलत। ऋषि मुनियों ने यदि सर्व-श्रेष्ठ सम्मान पाया था तो वह भी गांवों ही की बदौलत। गांवों को उजाड़कर शहरों को बसाने की इच्छा हमारे पूर्वजों ने कभी नहीं की, बल्कि हमेशा गांवों की तरक्की का ही उद्योग किया करते थे। यही कारण था कि भारत में सब तरह का सुख, शांति और वैभव मौजूद था। गांवों के सुधार से ही देश का सुधार हो सकता है।

सुधार का मूल मंत्र शिक्षा है। इसलिये सब से पहिले हमें गांवों में शिक्षा प्रचार करना चाहिये। गांवों में फी सैकड़ा एक शिक्षित व्यक्ति बड़ी मुश्किल से पाया जाता है। गांव के रहने वालों में विद्या-प्रेम बिलकुल नहीं होता। हजारों वर्ष हो गये गांवों के लोगों ने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया। उनके हृदय से शिक्षा का बीज ही नष्ट हो चुका। इसलिये गांवों में शिक्षा का प्रचार करने के लिये शुरू से ही मेहनत करनी

होगी। गांवों के लोग पढ़ना-लिखना पसन्द नहीं करते। वे कह देते हैं कि "हमें पढ़कर क्या करना है। हल चलाने में, खेती करने में, ढोर चराने में हमें पढ़ना लिखना क्या मदद देगा? इसलिये पढ़ने में व्यर्थ समय खोने और मेहनत करने से क्या फायदा?" इत्यादि। यह कोई नई बात नहीं है। बिना पढ़े लिखे आदमी अक्सर ऐसी ही बातें कहकर पढ़ना-लिखना बुरा बता दिया करते हैं। परन्तु वास्तव में यह बात ठीक नहीं है। शिक्षा हानि-प्रद तो हरगिज नहीं हो सकती। विद्या अमृत है। अमृत से भी किसी को हानि नहीं पहुंचती है? इसी तरह शिक्षा से कभी भी हानि नहीं हो सकती।

विद्या से ज्ञान की प्राप्ति होती है और इस मनुष्य के चोले के लिये ज्ञान ही एक जरूरी चीज है। अगर मनुष्य के पास ज्ञान नहीं हो तो उसमें और ढोर में कुछ भी फरक नहीं रह जाता। क्योंकि खाना, पीना, सोना, इत्यादि कार्य तो ढोर भी करते हैं। यदि पशु में और मनुष्य में भेद है तो सिर्फ इतना ही है कि पशु की अपेक्षा मनुष्य में ज्ञान की मात्रा कुछ ज्यादा होनी चाहिये। मनुष्य के लिये "ज्ञान" होना एक अत्यन्त आवश्यक बात है। मनुष्य जीवन पाकर जिसे ज्ञान नहीं उसका जीवन व्यर्थ है। ज्ञान से मनुष्य अपना भला-बुरा, हानि-लाभ, सुख-दुख, सब जान सकता है और उन्हें दूर भी कर सकता है। अज्ञान अँधेरे के समान है। जिस तरह अँधेरे में कुछ भी नहीं सूझ पड़ता इसी तरह

अज्ञानी को भी कुछ नहीं सूझता। वह अपने हानि-लाभ तक को भी नहीं जान सकता। "ज्ञान" के प्रकाश से वह सब कुछ देख-भाल सकता है। अज्ञान रूपी अँधेरे को हटाने के लिये ज्ञान रूपी सूर्य की जरूरत होती है। इसलिये ज्ञान की प्राप्ति के लिये विद्या परम आवश्यक वस्तु है।

मनुष्य मात्र ज्ञान का अधिकारी है। मनुष्य-शरीर ही यह प्रकट करता है कि परमात्मा ने हमें ज्ञान प्राप्त करने के सब साधन दिये हैं। फिर यह कहना कि "हमें पढ़कर या शिक्षा पाकर क्या करना है?" बड़ी भारी भूल की बात है। पढ़ लिखकर हम ज्ञान का वह अटूट खजाना जो कि हमारे ग्रंथों में है, पा सकेंगे और उसके अनुसार चलकर हम मनुष्य बन जायेंगे तथा अपना यह लोक और परलोक सुधार सकेंगे।

हमारे गांवों के रहने वाले भाई अशिक्षित, बिना पढ़े लिखे होने के कारण ही इस प्रकार का दुख भोग रहे हैं। इन बिना पढ़े लिखों पर पढ़े लिखे लोग अपना प्रभुत्व जमाते हैं—इन्हें हर तरह से दबाते हैं और अपना दांव गांठते हैं। यदि ये पढ़े लिखे हों तो बात-बात पर इस तरह न सताये जावें। पढ़ लिख जाने पर अपनी भलाई-बुराई का ज्ञान होगा और आत्मा में साहस-हिम्मत बढ़ेगा। बात-बात में किये जाने वाले अन्याय का सामना करने की ताकत पैदा हो जायगी। तब हर कोई, चपरासी, जमादार, अहलकार, पुलिस का सिपाही, वकील, मुख्तार, महाजन इन्हें मूर्ख समझकर दबा नहीं

सकेगा। आज गांवों के रहने वालों को ये लोग अपनी शिकार समझते हैं। एक साधारण चपरासी भी गांव में पहुंचकर नम्बरदार को डाट फटकार सकता है और नम्बरदार चुपचाप उसकी धमकियां सह जाता है। इसका क्या कारण है? इसका एक मात्र उत्तर शिक्षा की कमी है। नहीं तो क्या मजाल है कि गांव वालों को कोई कुछ कह सके? परन्तु बेचारे गरीब किसान पढ़े-लिखे न होने के कारण चुपचाप सब कुछ अन्याय सहजाते हैं। कारण कि वे अधिकारों को और कानून कायदों को नहीं जानते। जानें भी कैसे? क्योंकि शिक्षा तो पाई नहीं, जो कुछ भी सरकारी अहलकार उन्हें बतादें, वही उनके लिये ईश्वर की वाणी हो जाती है; और लोग अपना मतलब गांठने के लिये इन बेचारे गांव वालों को हमेशा उल्लू बनाये रखते हैं, इसलिये इन लोगों के चक्कर से बचने के लिये गांवों में शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है।

सब सुधारों की जड़ शिक्षा है, इसलिये सबसे पहिले गांव वालों को शिक्षित बनाने के लिये घोर परिश्रम करना चाहिये। इसके लिए गांव-गांव में पाठशालाएँ कायम करनी चाहिये। लोगों का यह कहना है कि गांवों के लोग निर्धन होते हैं, इसलिये ये दरिद्र नारायण पाठशालाओं में नहीं पढ़ेंगे; क्योंकि जो बालक अपना वक्त पाठशाला में खर्च करेगा, वही अपना समय खेती के काम में लगायगा तो उसे अधिक लाभ होगा। परन्तु यह सवाल कुछ महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि

जब हम देखते हैं कि गांवों के धनवान जमींदार और व्यापारी भी अपने बच्चों को पढ़ाने लिखाने की चिन्ता नहीं करते तो यही कहना पड़ेगा कि उन्हें विद्या का महत्व ही नहीं मालूम, इसीलिये वे अपने बालकों को शिक्षा नहीं दिलाते। दरिद्रता से मूर्खता का सम्बन्ध अवश्य माना जा सकता है; परन्तु दरिद्रता से मूर्खता उत्पन्न होती है, यह नहीं कहा जा सकता। वास्तव में देखा जाय तो हमारे देश में मूर्खता और दरिद्रता उत्पन्न करने वाली आजकल की शासन प्रणाली है। सरकार फौजों के लिये, रेलों के लिये, दिल खोलकर रुपया खर्च करती है, परन्तु शिक्षा के लिये उसका माथा ठनकता है। सरकार नहीं चाहती कि शिक्षा की तरक्की हो। क्योंकि यदि भारत की जनता शिक्षित होकर अपना अधिकार समझने लग जावेगी तो सीधा किया हुआ उल्लू हाथ से निकल जावेगा। यह फँसी हुई चिड़िया फन्दे से छूट जावेगी। सरकार अक्सर यह बहाना बना दिया करती है कि शिक्षा-प्रचार करने के लिये सरकारी खजाने में रकम ही नहीं रह जाती। इसका उत्तर यही है कि फौज तथा सिविल सर्विस का यह भारी खर्चा क्यों नहीं घटा दिया जाय? हर एक मुल्क के लिये शिक्षा एक अत्यन्त जरूरी बात है न कि फौज वगैरा। थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि सरकार के पास शिक्षा के लिये खजाने में रुपया नहीं है तो उसका फर्ज है कि जैसे दूसरे कामों के लिये नये-नये कर लगाकर रुपया वसूल कर लिया

जाता है उसी तरह शिक्षा के लिये भी नये कर लगाकर रुपया इकट्ठा करले, परन्तु वह ऐसा करना नहीं चाहती, क्योंकि जब तक भारत के किसान और मजदूर अशिक्षित हैं तभी तक शासन में आनन्द है। यदि शिक्षा का प्रचार किया गया तो साथ ही साथ सरकार की आयु भी क्षीण होने लगेगी। सरकार इस बात को अच्छी तरह जानती है, तभी तो वह गांवों के रहने वालों को शिक्षित बनाने का कुछ भी प्रयत्न नहीं करती।

सरकार यदि गावों में शिक्षा का इन्तजाम नहीं करती तो समझना चाहिये कि वह राज्य नहीं करती बल्कि अभ्यास करती है। जिस प्रजा के बल पर सरकार राज्य करती हो उसे उन्नत बनाना उस सरकार का पहिला फर्ज है। प्रजा की शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति की जिम्मेदारी सरकार पर है, इसलिये अपनी प्रजा को योग्य बनाने के लिये सबसे पहिला कर्तव्य सरकार का यह है कि वह उसे शिक्षित बनावे। यदि सरकार अपने स्कूल, कॉलिज और यूनीवर्सिटियों की ओर अंगुली उठाकर बतावे कि "देखो हमने सब-कुछ प्रबन्ध कर रखे हैं" तो हम पूछ सकते हैं कि "क्या यह आपका प्रबन्ध ३३ करोड़ भारतवासियों के लिए काफी है? क्या दूसरे देशों की तरह यहां शिक्षा पर रुपया खर्च किया जाता है? जैसे इंग्लैंड आदि देशों में गांव-गांव में मदर्से हैं वैसे ही यहां पर हैं? क्या जितना महत्व दूसरे देशों की सरकार

शिक्षा को देती है उतना ही यहां दिया गया है ?" इस
प्रश्न का उत्तर कुछ भी नहीं दिया जा सकता।

सरकार ने भारत के नगरों और कस्बों में स्कूल, कालिज
वगैरा स्थापित करके बोलने वालों की जबान थोड़ी-बहुत बन्द
कर रखी है; परन्तु हमारे गांवों में रहने वाले २८॥ करोड़
आदमियों की शिक्षा में सरकार कितना खर्च करती है इसको भी
कोई पूछने वाला है? जो सरकार अपना खजाना गांवों की पैदावार
से भरती है वह उन्हें शिक्षित बनाने के लिये कुछ भी उद्योग
नहीं करती! उसे, इन्हें शिक्षित बनाने में अपना नुकसान कर
लेने के और फायदा कुछ भी दिखाई नहीं देता; क्योंकि यदि
गांवों के लोग सब पढ़ लिख जावेंगे तो फिर इस प्रकार अन्याय
पूर्वक राज्य दो दिन भी नहीं चल सकेगा, इसलिये हमें अब
शिक्षा ही के लिये क्या बल्कि ग्राम-सुधार के लिये सरकार
का मुंह ताकने की जरूरत नहीं है। यदि सरकार के ह
भरोसे पर रहना है तब तो हमें गांवों के सुधार की चर्चा तक
भी नहीं करनी चाहिये। अब तो हमें अपने पैरों के बल खड़े
होने की जरूरत है।

भारत में देशी राज्य अर्थात् रियासतें भी बहुत हैं। यदि
देशी राज्यों में ही गांवों के सुधार की तरफ राजा लोग अपनी
दृष्टि डालें तो बहुत कुछ काम बन सकता है। किन्तु खेद है कि
दो चार सुधरी हुई रियासतों को छोड़कर बाकी सब जगह
ग्रामीण लोग अत्यन्त दुखी दशा में अपना वक्त गुजार रहे

हैं। बड़ोदा, मैसूर जैसी रियासतों में शिक्षा अनिवार्य करदी गई है। ग्वालियर में भी जमींदारों के सुधार के लिये "जमींदार-हितकारिणी सभा" राज्य की ओर से स्थापित थी, जिसके उपदेशक राज्य के गांवों में घूम-घूमकर किसानों को उनके हित की बातें समझाया करते थे। अब यह सभा तोड़दी गई है। स्वर्गीय श्री माधव नरेश का ग्राम-सुधार की तरफ बहुत ही ध्यान था। और भी कई रियासतें ऐसी हैं जो अपने किसानों को सुधारने में लगी हुई हैं। साथ ही कई राज्यों के किसानों के साथ इतना कठोर और निंद्य व्यवहार राज्य की ओर से किया जाता है कि वे रियासत छोड़-छोड़कर दूसरी जगह बसते जा रहे हैं। इस तरफ हमारे भारतीय महाराजाओं को शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये।

जब तक हमारे शासक ध्यान न दें तब तक हमें ही अपने सुधार की कोशिश करनी चाहिये। गांव के जमींदारों का कर्तव्य है कि वे अपने आश्रित किसानों की शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध करें। गांव के नम्बरदारों को अपने गांव में शिक्षा देने के लिये प्रबन्ध करना चाहिये। किसानों के शिक्षित हो जाने पर नम्बरदार की बहुत-सी कठिनाइयां मिट जावेंगी। नम्बरदार को चाहिये कि पहिले वह शिक्षित बने और अपने बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करे। उन्हें पढ़ते लिखते देखकर दूसरे किसानों के बालक भी खुदबखुद पढ़ने की तरफ झुकने लगेंगे। जमींदारों का फर्ज है कि सरकार को लिख पढ़कर

कह सुनकर अपने गांव में एक पाठशाला स्थापित करावे। और यदि सरकार न सुने तो फी घर कुछ चन्दा रखकर एक पढ़ाने वाला कायम कर देवे। पढ़ाने के लिये ऐसा आदमी नियत किया जाय जो खुद ग्राम-सुधार चाहता हो या गरीब हालत में हो। किसी फेशनेबल टकार्थी बाबू साहिब को पकड़ लेने से काम नहीं चलेगा। गांव का पटवारी यदि चाहे तो गांव के लोगों को बहुत कुछ शिक्षित बना सकता है। परन्तु दुर्भाग्य से अभी ऐसे पटवारियों की बहुत ही कमी है। पटवारी लोग अक्सर टकार्थी होते हैं। या यों कहिये कि किसानों से पैसा छीनकर अपनी जेब गरम करने के लिये ही पटवारी लोग १०–१२ रुपये महीने की तनख्वाह पर इस मंहगी के जमाने में भी अपनी जिन्दगी बिता देते हैं।

हर एक गांव में एक मन्दिर अवश्य होता ही है और उसकी पूजा करने वाला एक ब्राह्मण या साधु रहता है। मंदिर का पुजारी अक्सर पढ़ा लिखा होता है। अगर पढ़ा लिखा न हो तो जमींदार व नम्बरदार को चाहिये कि मंदिर का पुजारी पढ़ा लिखा तलाश करके रखा जाय; ताकि वह ठाकुर सेवा भी अच्छी तरह कर सके और कथा भागवत सुनाकर गांव के लोगों में धर्म की भावनाएं जागृत कर सके। इसी पुजारी की कुछ आमदनी और बढ़ाकर लड़के पढ़ाने का काम भी इसी के सुपुर्द कर देना चाहिये। नहीं तो किसी पढ़े लिखे साधु वैरागी को अपने गांव में ठहरा लेना चाहिये

और उसके पास गांव के लड़कों को पढ़ने के वास्ते बिठा देना चाहिये। इस तरह गांवों में शिक्षा का आरम्भ सहज ही में किया जा सकता है।

पहिले हिन्दुस्तान में पढ़ने पढ़ाने का ढंग यह होता था कि एक पढ़ा लिखा आदमी लड़के पढ़ाना शुरू कर देता था। पढ़ने वाला हर एक विद्यार्थी अपनी हैसियत के अनुसार गुरुजी को चार आने या आठ आने महीना दिया करता था। हर महीने दो सीधे अर्थात् एक आदमी की खुराक का आटा, दाल, घी, गुड़, नमक, मिर्च और दो पैसे हर अमावस, पूनम को दिया करता था। इसके अतिरिक्त सरस्वती पूजा के लिये एक-एक पैसा या अन्न हर पन्द्रहवें दिन या हर हफ्ते गुरुजी को दिया जाता था। प्रत्येक त्यौहार पर यथाशक्ति गुरुजी की भेट की जाती थी। इससे गुरुजी की गुजर हो जाती थी और विद्यार्थी विद्या प्राप्त किया करते थे। अब यह तरीका मिट-सा गया है। स्कूल के तरीके की पढ़ाई चालू हो गई है। परन्तु गांवों में विद्या-प्रचार के लिये भारत की पुरानी पद्धति काम में लाई जावे तो सहज ही गांवों में विद्या का प्रचार हो सकता है। ऐसा करने से पढ़ाने वालों को भी भार नहीं मालूम होगा और पढ़ने वाले पढ़ लिखकर योग्य हो जावेंगे।

गांवों में पढ़ाने वाले मास्टरों का गुजर बहुत कम खर्चे में हो सकेगा, क्योंकि लकड़ी कण्डों का मूल्य नहीं देना पड़ेगा

ये जंगल से प्राप्त हो सकेंगे। मेहतर का खर्च घट जावेगा और बहुत-सा फिजूल खर्च जो शहरों में होता रहता है घट जावेगा। एक गाय भी पाली जा सकेगी। जिससे दूध, घी, दही वगैरा पदार्थ शहरों की अपेक्षा लाख दर्जे अच्छे मिल सकेंगे। गौ के लिये घास वगैरा का कुछ ज्यादा खर्च भी न होगा। मास्टर अगर चाहेगा तो थोड़ी बहुत खेती का प्रबन्ध कर सकेगा। गांवों का सुधार चाहने वाले लोगों को इस ओर कदम बढ़ाना चाहिये। इस विषय में श्री. महात्मा गांधीजी महाराज कहते हैं:—

"मैं आप से कहता हूं कि आप गांवों में जाकर रहिये। वहां गांव वालों के मालिक या उपकारक की भांति नहीं, बल्कि उनके नम्र सेवक की तरह रहिये। अपने दैनिक कार्य और चरित्र से उन्हें नसीहत लेने दीजिये। कोरम-कोर सहानुभूति से काम नहीं चल सकता। जिस प्रकार अनियंत्रित भाप व्यर्थ होती है उसी तरह कोरी सहानुभूति भी किसी काम की नहीं। जिस तरह भाप को निश्चित करने से उसमें महान शक्ति आ जाती है उसी तरह सहानुभूति के भावों को कार्य रूप में परिणत करने से बड़ी जबरदस्त ताकत पैदा हो सकती है।"

और सुनिये महात्माजी कहते हैं:—

"गांवों में ग्रामणि बनकर रहिये। वहां बड़ा भारी कार्य क्षेत्र है। गांव की पाठशाला में काम कीजिये। वहां के बच्चों

को अपने बच्चों की तरह समझिये और बालकों की शिक्षा द्वारा ग्राम-वासियों की सेवा कीजिये । उनके कष्टों में हाथ बटाइये। मेरी प्रार्थना है कि आप गांवों में परमात्मा के दूत की तरह भारत की घायल आत्मा को संतोष तथा शान्त बनादें।"

जिसके दिल में भारत के लिए थोड़ी-सी भी लगन है, जो भारत को सुखी देखना चाहता है उसे महात्माजी के इन वचनों को ध्यान में रखकर मैदान में आजाना चाहिये। एक-एक गांव में एक-एक नवयुवक सुधार के लिये अपना आसन जमादे तो भारत का भाग्योदय शीघ्र ही हो सकता है। भारत में ६ लाख ८५ हजार ६६५ गांव है। इनके सुधार के लिये हमें इतने ही देश-भक्त नवयुवकों की आवश्यकता है। क्या ३२ करोड़ की आबादी में ऐसे ६ लाख युवक भी नहीं निकलेंगे जो अपना जीवन निर्वाह करते हुए देश की सच्ची सेवा भी कर सकें? बेकारी के मारे हुए हमारे पढ़े-लिखे नवयुवक जो नौकरी की तलाश में इधर-उधर जूतियाँ चटकाते-फिरते हैं यदि गांवों की तरफ अपना ध्यान दें तो वे स्वार्थ और परमार्थ दोनों पा सकते हैं। गांवों में रहकर जीवन सादा और पवित्र हो जावेगा, उदर निर्वाह हो सकेगा, विद्यादान जैसा पवित्र कार्य करने को मिलेगा, और देश की पवित्र सेवा करने का सुअवसर भी मिल सकेगा। रोजगार की फिराक में घूमने वालों को हमारी सलाह के अनुसार एक-दो साल इस काम को जरूर कर देखना चाहिये।

गांवों में शिक्षा कैसी हो ? इस विषय पर थोड़ा-सा विचार अवश्य करना पड़ेगा। गांवों की शिक्षा का उद्देश्य नौकरी आदि करना तो होगा ही नहीं, बल्कि उनकी बिगड़ी हालत को ठीक करना है। इसलिये सब से पहिले गांवों के लोगों की आवश्यकता और उनकी दिल-चस्पी, हमदर्दी और सहयोग भी प्राप्त करना होगा। परन्तु अशिक्षित गांव वाले शिक्षा के गुणों को न जानने के कारण उसकी कद्र भी नहीं करेंगे। उन्हें समझाना पड़ेगा कि पढ़-लिखकर आप लोग अपना काम अच्छी तरह चला सकोगे। इससे आपकी आमदनी भी जरूर बढ़ जावेगी। दूसरों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। दस्तावेज पढ़कर उस पर दस्तखत कर सकोगे। कोई आदमी आपसे जी चाहे जिस कागज पर अंगूठा लगवाकर आपको धोका न दे सकेगा। साहूकार का हिसाब-किताब, ब्याज वगैरा आप अच्छी तरह समझ सकेंगे और जांच सकेंगे। आप भी साहूकार का जमा-खर्च अपने यहां बही-खातों में रख सकेंगे। गांव के पटवारी, पुलिस के सिपाही और कचहरी के चपरासी वगैरा आपको नहीं दबा सकेंगे। बल्कि पढ़-लिखकर आप उनकी चुटिया अपने हाथों में रख सकोगे। आप अपने नाते-रिश्तेदारों को अपनी गुप्त बातें पत्र-चिट्ठी द्वारा खुद लिखकर भेज सकोगे। सरकार दरबार में लिखा पढ़ी करने के लिये दूसरों का मुँह नहीं ताकना पड़ेगा। कानून कायदे खुद पढ़कर मालूम कर सकोगे। बिना पढ़ा लिखा आदमी हर

बात में पराधीन रहता है। परन्तु पढ़कर आप दूसरों का मुँह न ताकेंगे। जब इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य और महत्व गांव वालों को आप बतादेंगे तो वे अवश्य पढ़ने के लिये राजी हो जावेंगे।

हमारे इस लिखने से यह तो मालूम हो गया होगा कि गांवों में किस तरह की शिक्षा होनी चाहिये? अब जरा इस पर स्पष्ट रीति से विचार करना चाहिये। उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये जिस पढ़ाई की आवश्यकता है वह अलग ही ढंग की होगी। उस पाठशाला का ढंग ढांचा उस ही ढंग का रखना पड़ेगा जिसमें कि गांवों के बच्चे रहते हों। सामाजिक जीवन का केन्द्र, और जातीय आदर्शों का सूचक ढंग पढ़ाई में सम्मिलित करना होगा। ग्रामीण समाज के जो उद्देश्य होंगे वे ही उद्देश्य इस पाठशाला में रखने होंगे। सेवा के भाव पाठशाला में पैदा करने पड़ेंगे। पढ़ने की पुस्तकें, गांवों के बालकों की बुद्धि और उनके सामाजिक जीवन के अनुकूल होनी चाहिये। ऐसी नई पुस्तकें तय्यार करनी होंगी।

गांवों की पाठशाला में शिक्षा का माध्यम देशी भाषा हो। गुजरात में गुजराती, बंगाल में बंगाली, पंजाब में पंजाबी इत्यादि प्रान्तीय भाषाओं में शिक्षा होनी चाहिये। पाठ्य-क्रम में औद्योगिक शिक्षा का मुख्य स्थान होना चाहिये। लिखना पढ़ना और गणित शिक्षा में खास विषय रखे जावें। लिखना अच्छी तरह आ जाना चाहिये। चिट्ठी पत्री, अर्जी, दरख्वास्त

वगैरा भली प्रकार लिख सकें। पढ़ना भी अच्छी तरह आना चाहिये। कानून, कायदों की पुस्तकें, चिट्ठी पत्री, सरकारी कागजात, अखबार और रामायण आदि पुस्तकें पढ़कर समझ सकें। हिसाब में जोड़, बाकी, गुणा, भाग, त्रैराशिक, पंच-राशिक और ब्याज तक शिक्षा देनी चाहिये। कुछ जबानी हिसाब किताब भी "गुरु" की पद्धति पर पढ़ाये जाने चाहिये; ताकि अपना हिसाब किताब-जबानी भी कर लिया करें। भूगोल का तथा इतिहास का भी थोड़ा बहुत ज्ञान करा दिया जाय। बालकों को दस्तकारी की शिक्षा भी होनी चाहिए। दस्तकारी में मुख्य स्थान सूत कातना, निवार बनाना, बुनना, रस्सी बंटना, लकड़ी का काम, लोहे का काम इत्यादि होना चाहिये। कृषि, और पशु-पालन के बारे में भी उचित शिक्षा देने का प्रबन्ध होना चाहिये। जमीन की जुताई, खाद, बीज, सिंचाई वगैरा की शिक्षा के साथ ही साथ खेती में होने वाले रोग इत्यादि को हटाने के उपाय भी सिखाये जाने चाहिये। गीत और कथा कहानियाँ को भी पढ़ाई में शामिल करना चाहिये। साथ ही व्यायाम के लिये खेल कूद भी होनी चाहिये। पढ़ाने का ढंग इस तरह का रखा जावे कि बच्चे घबड़ा न जावें। आरम्भ में उन्हें बहुत ही प्रेम से और कम महनत लेकर पढ़ाना पड़ेगा, ताकि वे पढ़ने से भड़क न जावें। पढ़ाई का वक्त ऐसा रखना पड़ेगा जिसमें पढ़ने वाले अक्सर ठलुए रहते हों। इस तरह यदि

योग्य शिक्षक गांवों में पढ़ाने लग जावें तो गांव का बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

मतलब यह है कि पढ़ाई इस तरह की हो जिससे कि बच्चा साधारणतया किसी भी बात में अड़ने न पावे। साथ ही वह इतना तय्यार हो जावे कि पाठशाला छोड़ने के समय उसे अपने समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का ज्ञान रहे। और वह अच्छी तरह समझ सके कि उसका जन्म इस पृथ्वी पर किस लिये हुआ है? इस प्रकार के शिक्षण से जो भी कुछ फायदा उसे पहुंचेगा वह महान होगा। तीन बातें बच्चों के दिल पर अच्छी तरह अंकित हो जानी चाहियेः—(१) कार्य कुशलता, (२) स्वतन्त्रता और (३) समाज सेवा। यदि हमारी शिक्षा से ये तीनों बातें हृदय में स्थान कर सकीं तो उस शिक्षण को सफल समझना चाहिये।

रात्रि पाठशाला।

गांवों के लोग रात-दिन खेती बारी के धन्धों में लगे रहने के कारण दिन के समय बहुत ही कम फुर्सत पाते हैं। गांवों के लड़के अक्सर १६।१७ वर्ष की उम्र तक जंगल में ढोर चराया करते हैं और बाद में खेत का काम-काज; जैसे हल चलाना, कुआ चलाना, नींदना, गोड़ना, बोना वगैरा। ऐसे लोग जो दिन में फुरसत नहीं पाते उन्हें रात के वक्त पढ़ाने का प्रबन्ध करना चाहिये। रोटी वगैरा खा लेने के बाद आठ

बजे से दस बजे रात तक या इससे कम ज्यादा वक्त सुविधा के अनुसार मुकर्रर करके रात्रि पाठशाला के रूप में बड़े आदमियों को पढ़ाना चाहिये। कुछ आदमी ऐसे भी निकलेंगे जो पढ़ना पसन्द नहीं करेंगे उन्हें सुनाना चाहिये। ऐसे लोगों को रामायण, महाभारत की कथा भाषा में पढ़कर सुनानी चाहिये और समझानी चाहिये। इसी प्रकार दूसरी उपयोगी पुस्तकें तथा समाचार पत्र भी उन्हें पढ़कर सुनाते रहना चाहिये; ताकि वर्तमान समय के हाल-चालों से भी वे जानकार रहें। देश-देशांतर की खबरों को और नई-नई बातों को गांव वाले बड़े ही चाव से सुनते हैं और उसकी दूसरों में चर्चा करते हैं, इस प्रकार के शिक्षण का भी प्रबन्ध करना चाहिये। रात्रि पाठशाला, छोटा-सा पुस्तकालय, जिसमें एक दो अच्छे-अच्छे पत्र भी आते हों अवश्य होना चाहिये। साथ ही रामायण आदि पुस्तकों की कथा भी होती रहनी चाहिये।

विदेशों में रात्रि पाठशालाएं बहुत चलती हैं; क्योंकि ऐसे गरीब लोग जिन्हें दिन में मजदूरी से वक्त नहीं बचता—रात में पढ़ते हैं। वहां विद्या प्रेम है। सरकारी कानून है कि देश में अपढ़ नहीं रह सकता, पढ़ना एक लाजिमी बात है, इसी कारण वहां रात्रि पाठशालाएं खूब चलती हैं। परन्तु हिन्दुस्तान में न तो सरकार को ही हमें शिक्षित बनाने की चिन्ता है और न हमें ही खुद शिक्षा से कुछ प्रेम है! वहां ढूंढने पर एक भी निरक्षर मनुष्य नहीं मिल सकता तो यहां ९० फी सैकड़ा ऐसे

मिल सकते हैं जिनके आगे "काला अक्षर भैंस बराबर है !" हमारे सब दुःखों का मूल कारण यह अशिक्षा ही है; क्योंकि जहां शिक्षा का अभाव होता है वहां सभी तरह की बरबादी हो जाती है, इसलिये भारत को उन्नत करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

स्त्री-शिक्षा।

गांवों के लिये हमें स्त्री-शिक्षा पर अधिक लिखना कुछ अटपटा-सा मालूम होता है; क्योंकि स्त्री शिक्षा का प्रश्न अभी शहरों और कस्बों के लिये ही अच्छी तरह से हल नहीं हो पाया है, हल भी हुआ है तो शिक्षित कहलाने वाले लोग भी अभी स्त्रीशिक्षा के विरोधी बने हुए हैं। फिर गांवों की तो बात ही क्या है ? जहां पुरुषों की शिक्षा ही कठिन कार्य है वहां स्त्रियों की शिक्षा का जिक्र करना भी भयानक भूल है; किन्तु पुरुषों के शिक्षित होने पर स्त्रियों की शिक्षा की भी जरूरत पड़ेगी। क्योंकि शिक्षितों ओर अशिक्षितों का एक साथ रहना असम्भव है और यदि किसी तरह रहें भी तो सारा आनन्द धूल बन जाता है। स्वर्ग, नरक के समान मालूम होने लगता है। गृह का सुख, दुःख बन जाता है। स्त्री पुरुषों के शिक्षित होने से सब जगह सुख, शांति और आनन्द दिखाई पड़ने लगता है। इसलिये पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी शिक्षा मिलनी चाहिये। उन्हें भी पढ़ाया लिखाया जाना चाहिये।

यदि आरम्भ में स्त्रीशिक्षा के कार्य में सफलता न मिले तो उन्हें व्याख्यानों द्वारा और उपदेशों द्वारा उनके कर्तव्य सुझाते रहना चाहिये। पतिव्रत धर्म, घर धन्धा संतानपालन, सफाई, सीना-पिरोना आदि बातें उन्हें समय-समय पर समझाते रहना चाहिये। रामायण, प्रेम-सागर, महाभारत आदि ऐतिहासिक कथाएं सुनाते रहना चाहिये; जिससे उनकी नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति हो सके। स्त्रियों के लिये फिलहाल यही शिक्षा गांवों में ठीक होगी। ज्यों-ज्यों विद्या का प्रचार होता जाय त्यों-त्यों स्त्रीशिक्षा का भी विस्तार करते जाना चाहिये।

जो अध्यापक या सुधारक गांवों में 'ग्राम-सुधार' की इच्छा से जाकर बसें उनकी स्त्रियं, गांव की स्त्रियों में शिक्षा प्रचार कर सकती हैं। चाहें तो वे गांव की लड़कियों को इकट्ठी करके कन्या पाठशाला चला सकती हैं। हर एक गांव वाले के घर जा-जाकर उनकी स्त्रियों में स्त्रीशिक्षा का बीज बोना पड़ेगा। उनमें मिलकर रहना पड़ेगा। उनका रुख देख-कर सुधार की चर्चा करनी पड़ेगी। पुरुषों की अपेक्षा इस काम को स्त्रियां ही अच्छी तरह कर सकेंगी। सुधारकजी की श्रीमती इस कार्य को करें तो बहुत ही अच्छा होगा।

हमारे नागरिक स्त्री-पुरुषों को अब देश सुधार के लिये 'ग्राम-सुधार' की इच्छा से गांवों की ओर चल देना चाहिये। तभी कुछ सुधार हो सकता है। ग्राम सुधार का जबानी

जमा-खर्च करने से काम नहीं चलेगा। यह नहीं भूलना चाहिये कि—

"प्रत्येक गांव एक छोटा राष्ट्र है, ऐसे सात लाख के लगभग राष्ट्रों से मिलकर भारतवर्ष एक बड़ा राष्ट्र बना है। ग्राम-सुधार हो जाय तो, भारतवर्ष का सुधार हो जाय।"

उद्योग धन्धे।

भारत का वैभव गांवों की झोंपड़ियों में है। पहिले जमाने में भारत के उद्योग धन्धों का प्रबन्ध झोंपड़ियों में ही होता था। उन दिनों एक जुलाहा कपड़ा बुनने में प्रायः सब सामान अपना ही लगाया करता था। पूंजी या तो अपनी ही होती थी, या किसी दूसरे से कर्ज लेकर काम चलाता था। करघा वगैरा राछ सब उसके निजी होते थे। सूत कातने से लगाकर कपड़ा बनाने तक का काम अपने घर के मनुष्यों की सहायता से करलिया करता था। इससे वह कुटुम्ब सहित अत्यन्त सुखी और आनन्दित रहता था। यही दशा दूसरे पेशेकारों-बढ़ई, चमार, लोहार, सोनार, वगैरा की थी। इन उद्योग धन्धों के कारण हमारे भारतीय गांव बड़ी ही अच्छी हालत में थे। भोजन, वस्त्र आदि सभी जीवनोपयोगी चीजें हमें गांवों ही से मिल जाती थीं। हमारे गांव पुराने जमाने में उद्योग धन्धों के केन्द्र थे। बड़े बड़े हुनरी, कारीगर, शिल्पी, इन गांवों में ही रहा करते थे। हमारे गांवों से इतना माल तैयार होता था कि

अपने देश की जरूरत पूरी करने के बाद विदेशों के बाजारों में भी यहां का माल बिकने जाया करता था और वहां रकम कीमत पाता था। यहां की चीजों को देखकर वे लोग उन्हें देव-निर्मित वस्तु समझते थे। कहना नहीं होगा कि इन चीजों को अपने देशों में बिकती देखकर ही वहां के निवासियों की नजर हिन्दुस्तान पर गड़ी थी। एक वह समय था कि भारत के उद्योगी मनुष्य अपने माल से सारी दुनिया के बाजारों को भरते थे और आज एक यह भी समय है कि हम अपनी आवश्यकताएं ही पूरी नहीं कर सकते और लगभग तीन अरब का माल हर साल दूसरे देशों से अपने लिये मंगाते हैं। यह 'ग्रामीण उद्योग धन्धों' के विनाश का कारण है।

जब से कल-कारखाने निकले हैं तब से उद्योग धन्धों के क्षेत्र में एक भारी उथल-पुथल हो गई है। जो चीजें पहिले घर-घर पैदा होती थीं वे अब कल-कारखानों में तैयार होने लग गई हैं। इन कल कारखानों के प्रचार से हमारे देश में बेकारी किस तरह बढ़ी? यह हम पीछे समझा आये हैं। इन कार-खानों ने, फेक्टरियों ने हमारे उद्योग धन्धों को एक बड़ी भारी ठेस पहुंचाई है। यन्त्रों की सहायता से बने हुए माल को, हाथ के बने माल से धक्का पहुंचाना, बिलकुल असम्भव बात है। हाथ का बना माल कल-मशीनों के माल के सामने सस्ता नहीं पड़ता, इसे प्रत्येक विचार-शील मनुष्य समझ सकता है। कल-कारखानों ने भारत की सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और

शारीरिक सभी बातों को भयानक हानि पहुंचाई। गांवों का गृह-उद्योग बिलकुल बर्बाद हो गया। लोग हाथ पर हाथ रख कर बैठ गये। जब भूखों मरने का प्रश्न सामने आया तो बेचारे खेती की ओर झुक गये। कृषक बढ़ गये और गांवों के उद्योग धन्धे नष्ट हो गये।

हद से ज्यादा किसानों के बढ़ जाने से फिर वही बात सामने आई। जमीन कम और किसान अधिक! अब गांवों में फिर बेकारी का प्रश्न पैदा हो गया! बेचारे गांव के लोग अपने पेट की आग बुझाने के लिये शहरों की ओर दौड़े। कल-कारखानों में नौकरी करनी पड़ी या कहीं रोज मजदूरी पर काम करके जीवन निर्वाह करने लगे। शहरों में आकर इन गरीबों को सुख शांति से जिन्दगी बसर करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ! पुतली-घरों में दस-दस घन्टे काम करके अपनी तन्दुरुस्ती बर्बाद करदी। वहां की दूषित वायु में रहकर विविध रोगों के घर बन गये। अधिक कार्य करने के लिये या काम की थकान उतारने के लिये नशे की वस्तु सेवन करना आरम्भ कर दिया। "करेले और नीम चढ़े" बस फिर क्या था? अपने हाथों अपना सर्वनाश आरम्भ कर दिया। इस प्रकार उद्योग धन्धों के नष्ट हो जाने पर बेचारे ग्रामीणों ने अपना तन, मन और धन सब मिट्टी में मिला दिया।

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपना धन्धा अभी तक जैसे-तैसे चलाये आ रहे हैं। उदाहरणार्थ जुलाहों को ले लीजिये।

गांवों में अभी तक जुलाहे कपड़ा बुनते हैं; परन्तु वे केवल एक लकीर-सी पीट रहे हैं। इसमें उन्हें चाहिये उतना मुनाफा अब नहीं मिलता; क्योंकि मिलों के बने कपड़ों के मुकाबले में हाथ के बने कपड़े सफाई और दामों में ठहर ही नहीं सकते। इसके अतिरिक्त पहिले सभी चीजें वे अपने घर में ही बनाकर काम में लाते थे, किन्तु अब? अब तो जुलाहे बाजारों से मिलों के द्वारा काता हुआ सूत ले आते हैं और उससे कपड़ा बुनते हैं। जो कुछ भी मजदूरी उन्हें मिल जाती है उसे ही गनीमत समझते हैं। "ठाले बैठे बेगार ही सही" के रूप में ये लोग कपड़े बुनने का काम करते हैं। वास्तव में देखा जावे तो उससे इन लोगों की पेट भराई अच्छी तरह नहीं हो सकती। इसलिये विवश होकर इन कारीगर लोगों को अपना परम्परागत धन्धा करते हुए खेती भी साथ साथ करनी पड़ती है। जिन्हें काफी जमीन मिल गई है, वे तो पूरे किसान बन गये और जिन्हें किसी कारण वश जमीन यथेष्ट नहीं मिली है, वे वंश-परम्परा का शिल्प कार्य भी करते हैं और खेती बाड़ी भी करते हैं। खेती के दिनों में थोड़ी बहुत खेती कर लेते हैं और फुर्सत के दिनों में अपना पुराना धन्धा करके निर्वाह करते हैं।

मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट पढ़ने से हमारे सत्यासत्य का निर्णय हो जाता है। रिपोर्ट में लिखा गया है कि "देशी विदेशी पुतलीघरों के सस्ते माल के कारण पुराने धन्धे वालों को अब फायदा नहीं होता। वे लोग अपना पुश्तैनी धन्धा

छोड़ कर किसान बनते जा रहे हैं" इत्यादि। ये लोग खेती की तरफ दौड़े तो, परन्तु इन्हें यहां भी उससे कम कठिनाइयों का मुकाबिला नहीं करना पड़ा। उद्योग धन्धों के नष्ट हो जाने से लोगों की माली हालत बिलकुल खराब हो गई, इसलिये अच्छे ढंग से खेती भी नहीं कर सके। दो-दो चार-चार रुपयों की जरूरत पड़ने पर भी पैसे वालों की चरण-बंदना के लिये उनके पास दौड़ना पड़ा। अगर पानी अच्छा और मौके का बरस गया तो फसल भी अच्छी हुई, नहीं तो किसानों का मरण ही समझिये। अकाल पड़ने पर खेतिहारों को कुछ भी उपाय नहीं सूझता। पास में धन न होने से दुर्भिक्ष के दिनों में पेट भरना मुश्किल हो जाता है। शिल्पी लोग यदि कुछ धन्धा भी करें तो बाजार में उनके माल की कद्र नहीं होती। यही कारण है कि सूखा पड़ते ही गांव के लोगों की तबाही आ जाती है। बेमौत भूख से छटपटाकर अपने प्राण त्यागते हैं। एक साल के अकाल में देहाती लोगों के हजारों घर ऊजड़ हो जाते हैं। लाखों करोड़ों मनुष्य दाने दाने के लिये तरसते हुए मौत के मुख में पहुंच जाते हैं। पशुओं की तो कुछ पूछिये ही नहीं! जब मनुष्यों की ही बुरी दशा होती है तो ढोरों की कौन पूछता है? उद्योग धन्धों की बर्बादी से गांव के लोगों को इस तरह बिना मौत मरना पड़ता है।

जबसे उद्योग धन्धे बर्बाद होगये तबसे अकाल के कारण काल के कराल गाल में पहुंचने वाले कृषकों की संख्या बहुत

ही बढ़ गई है। "फेमिन कमीशन" ने अपनी रिपोर्ट में यह लिखा है कि "लोगों को रोजगार धन्धों में लग जाना चाहिये, और किसी को भी खेती से जीवन निर्वाह करने की आदत नहीं डालनी चाहिये। यदि लोग रोजगार धन्धे करने लगेंगे तो उन्हें दुर्भिक्ष इस तरह बर्बाद नहीं कर सकेगा।" ये रिपोर्टें केवल कागजों में ही होती हैं। इनका प्रचार गांवों तक नहीं किया जाता। गांवों के रहने वालों को ऐसी बातें कोई समझाता ही नहीं है। सरकारी रिपोर्टें अक्सर अंग्रेजी भाषा ही में होती हैं। देशी भाषाओं में सरकार उन्हें प्रकाशित नहीं कराती इसका फल यह होता है कि कुछ अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग ही उस "कमीशन-रिपोर्ट" को पढ़ लेते हैं। मानों ऐसा करने से जिस बात के लिये कमीशन बिठाया गया था उसके उद्देश्यों की पूर्ति होगई। अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग गांवों में जाना या गांवों के लोगों के साथ बातचीत करना "आउट आव पोजीशन" (असम्मान्य) समझते हैं। कमीशन के दूसरे खर्चों में सरकार लाखों रुपये खर्च कर देती है। यदि उस रिपोर्ट का सरल और सुबोध अनुवाद देशी भाषाओं में कराके सर्वसाधारण में बांटा या बेचा जावे तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है। कितने आश्चर्य की बात है कि जिन लोगों के दुःख पर प्रकाश डालने के लिये कमीशन की नियुक्ति होती है उन्हें मालूम तक नहीं पड़ने दिया जाता कि "कमीशन की जांच का फल क्या हुआ?"

दुर्भिक्ष के समय में तो उद्योग धन्धों से भी काम चलना कठिन होजाता है, क्योंकि जब किसानों के पास खाने ही को नहीं होगा तो दूसरी चीजें वे खरीदेंगे ही कहां से ? कल कारखाने बन्द होजावेंगे या काम में कमी आजावेगी। जब जूट, कपास, रुई वगैरः कच्चा माल ही नहोगा तो कल कारखाने करेंगे भी क्या ? पेशे वालों के माल यों ही रखे रह जायंगे। ऐसी हालत में पेशे वालों की हालत भी खराब होजावेगी; इसलिये रोजगार धन्धों में लगजाने ही से दुःख द्रारिद्र्य दूर नहीं होसकेगा। तो भी यह मानना ही पड़ेगा कि उद्योग धन्धों पर निर्भर रहने वाले उतने कष्ट में नहीं पड़ेंगे जितने कि केवल खेती पर रहने वाले। खेती में सुधार करने से भी यह दुर्दशा हटाई जासकती है, परन्तु खेती के साथ ही साथ किसानों को दूसरे उद्योगों को भी अपनाना चाहिये। जो आदमी खेती और उद्योग धन्धे को साथ ही साथ चलाते हैं वे आर्थिक मुसीबत में बहुत ही कम फंसते हैं। यदि खेती की हालत खराब होजावे तो दूसरे रोजगारों से जीवन निर्वाह किया जासकेगा। इस प्रकार दोनों कामों को हाथ में रखने से मनुष्य दुःख और दारिद्र्य के पंजे से बच सकेगा। खेती बाड़ी से जो वक्त बचता है उसे घरू उद्योग-धन्धों में लगाना चाहिये। साल में कई महीने खेतिहारों के लिये ऐसे गुजरते हैं जिनमें वे हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते हैं। इस बेकारी के वक्त में यदि दूसरे

धन्धों को अपनाया जाय तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है। भूखों मरने की नौबत नहीं आ सकती।

सबसे पहिले देहाती लोगों को अपना कच्चा माल बाजार में जाने से रोकना चाहिये। हम पहिले कह आये हैं कि हमारी प्रत्येक आवश्यकीय वस्तु गांवों से ही आती है। अन्न, वस्त्र, दूध, घी, शक्कर, लोहा, तांबा, चांदी, सोना सब कुछ हमें गांवों से मिलता है। शहरों में ये कुछ भी पैदा नहीं होता। यदि गांवों के रहने वाले अपना कच्चा माल शहरों में न पहुंचने दें तो उनका बहुत कुछ सुधार हो सकता है। सुधार ही क्या, वे अपनी पूर्व अवस्था को पा सकते हैं। गांवों में सुख और ऐश्वर्य का दृश्य दिखाई पड़ने लग जावेगा। उदाहरणार्थ गांवों के लोग अपनी फसल आते न आते उसे गांवों और कस्बों में पहुंचाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। उनके खेतों में पैदा हुई वस्तु खलिहानों में तय्यार होते ही गाड़ियों में लाद लाद कर शहरों या कस्बों में पहुँचा दी जाती है। बिचारा किसान उसे अपने घर में एक दिन भी नहीं रख सकता! ऐसा जान बूझ कर नहीं किया जाता; बल्कि मजबूरी दर्जे करना होता है। सरकारी लगान की वसूली और साहूकार का तकाजा उस बेचारे किसान को ऐसा करने के लिये विवश करता है। किसानों की आर्थिक स्थिति इतनी बुरी होती है कि वे अपनी फसल को घर में रख ही नहीं सकते; इसीलिये सबसे पहिले अपनी आर्थिक दशा को सुधारने के लिये ग्रामवासियों को

दूसरे उद्योग धन्धे अपनाने चाहिये। जब तक दूसरे धन्धों को नहीं अपनाया जायगा तब तक किसानों की यही हालत रहेगी कि फसल के आते ही अन्न सस्ते दामों में दूसरों को बेच देना होगा; और फिर जरूरत पड़ने पर उन्हीं से महंगा खरीदना पड़ेगा।

किसानों को अपनी माली हालत कम से कम इतनी तो अवश्य ही सुधार लेनी चाहिये कि अपनी फसल अपने घर में अच्छा भाव आने तक रख सकें; ऐसा करने से बहुत कुछ काम बन जावेगा। यह काम यदि धीरे किया जायगा तो इसमें अच्छी सफलता होने की आशा है। एक साल यदि कर्जा लेकर भी सरकारी तौजी (लगान) देकर अपनी उपज घर में रखी जा सके और वक्त पर उस उपज से अच्छी कीमत उठा कर वह कर्जा चुकाया जाय तो आयन्दा के लिये हालत बहुत कुछ ठीक हो जावेगी। गेहूं न बेच कर गेहुओं का आटा बेचा जाय। चने, मूंग, उड़द, मसूर वगैरा न बेच कर इनकी दाल बना कर बेची जावे। तिल्ली, राई, सरसों, मूंगफली की कीमत अगर अच्छी न आती हो तो इनका तेल निकलवाकर बेचा जावे तो दाम अच्छे आवेंगे और इनकी खली पशुओं को खिलाने अथवा खेत में खाद के काम आवेगी। सन न देकर उसकी बनी रस्सियां बेचनी चाहिये। कपास न देकर रुई, सूत और वस्त्र देने चाहिये इत्यादि काम ऐसे हैं जो गांवों में अच्छी तरह किये जा सकते हैं। इस प्रकार उद्योग धन्धों को अपना

लेने से, जो गांव आज कंगाल बन रहे हैं सम्पत्तिशाली हो जावेंगे। थोड़े श्रम की जरूरत है।

सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये मेहनत की जरूरत है। महाराजा भर्तृहरि ने कहा है कि "उद्योगिनं पुरुषसिंह मुपैति लक्ष्मीः" यदि उद्योग श्रमहीन किया जाय तो सम्पत्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती। देखिये जंगलों में अनेक प्रकार की बहुमूल्य जड़ी बूंटी पैदा होती हैं। ये जड़ीबूंटियां लोगों को जीवनदान करने तक में समर्थ हैं; परन्तु जंगल में इनका कुछ भी मूल्य नहीं। यदि वे ही जड़ी बूटियां श्रम करके बाजारों में पहुंचा दी जावें तो उन्हीं से पैसा प्राप्त किया जा सकता है, लोगों को लाभ पहुँचाया जा सकता है। परमात्मा ने मनुष्य जाति को सम्पत्तिशाली बनने के लिये बहुत कुछ पदार्थ दे रखे हैं, बशर्ते कि वह थोड़ा श्रम करके उनसे लाभ उठावे। नदियों में जल है, खानों में बहुमूल्य पदार्थ हैं, पहाड़ों में पत्थर है, जंगलों में वृक्ष बनस्पतियां हैं, ईश्वर ने हमें सब कुछ दिया, परन्तु इन्हें व्यवहार में लाने के लिये श्रमशील मनुष्य की जरूरत है। नदियों से जल लाकर खेती सींची जा सकती है, खानों से बहुमूल्य धातुएं निकाली जा सकती हैं, पहाड़ों से पत्थरों को लेकर उन्हें काम में लाने योग्य बनाया जा सकता है। जंगल के वृक्षों को काट कर उनकी लकड़ियां काम की बनाई जा सकती हैं। इन सब के लिये मेहनत की जरूरत है। अर्थात उद्योग धन्धों से लाभ उठाने के लिये श्रम की अत्यन्त

आवश्यकता है। गांव के लोग बड़े मेहनती होते हैं, आराम उन्हें नहीं सुहाता, परन्तु उन्हें कोई मार्ग बताने वाला ही नहीं तब वे विचारे करें भी क्या? स्वयं सोचने विचारने की शक्ति उनमें है ही नहीं, क्योंकि वे अशिक्षित होते हैं।

गांवों में उद्योग धन्धों की शुरूआत होने पर माल की खपत का भी पूरा प्रबन्ध करना पड़ेगा। आजकल लोग प्रत्येक वस्तु के लिये शहरों की ओर भागते हैं। गांवों के रहने वाले भी अपनी जरूरी वस्तुयें शहरों के बाजारों से खरीदते हैं। पहिले बाजारों में गांवों की बनी वस्तुओं की बहुतायत होती थी और अब गांवों में शहरी चीजों की भरमार है! हमारे गांवों के घरू-धन्धों के मिट जाने से आज सारे देश को दूसरे मुल्कों के मुँह ताकने की नौबत आ गई है छोटी से छोटी वस्तु भी हम विदेशों से पाते हैं। जीवन की आवश्य-कीय वस्तुएं वस्त्र और अन्न तक भी आज हमें विदेशों से खरीदना पड़ता है। वस्त्र तो हर साल ६० से ७० करोड़ रुपये तक का विदेशों से आता ही है, अब इधर अन्न भी आने लगा है। नकली आटा, नकली घी, नकली शक्कर, नकली दूध, नकली कपास न जाने क्या क्या नकली चीजें भारत में आने लगी हैं। जब कि असली चीजों का लोप हो जाता है तब उनका स्थान नकली ही लिया करते हैं। गांवों के उद्योग धन्धे बर्बाद हो जाने से असलियत का नाश होकर उनकी जगह नचली ही नकली आ जमे। पहिले समय में

गांवों का समाज अपनी आवश्यकीय चीजें आप ही बना लिया करता था; दूसरे गांवों से या शहरों से बहुत ही कम मदद लेनी पड़ती थी। खाद्य द्रव्य तो पैदा करते ही थे, परन्तु शेष द्रव्य भी शिल्पी लोग गांव ही में तैयार कर लिया करते थे। बढ़ई, लोहार लकड़ी और लोहे का सामान तैयार कर दिया करते थे। चमार चमड़े का काम करता था। जुलाहे सूत कातते और कपड़ा बुनते थे। घर-घर स्त्रियां चर्खा चला कर कपास से रुई और बिनौलों को अलग करके रुई पिंजारे को देती थीं। बिनौले पशुओं को चराने, तेल निकालने और बोने वगैरा के काम में आते थे। स्त्रियां चर्खा कात कर सूत तैयार कर देती थीं, धोबी कपड़े धो दिया करता था, नाई हजामतें बना देता था, कुम्हार मिट्टी के बर्तन निर्माण करता था; बागरी, भील, बहेलिया वगैरा लोग रात के वक्त पहरा चौकी का काम करते थे, नोनियार नमक बनाता था, बनिया सौदा खरीदता बेचता तथा रुपये पैसों का लेन देन करता था; मतलब यह कि किसी भी चीज के लिये गांवों के लोगों को कस्बों और नगरों का मुंह देखने की जरूरत नहीं पड़ती थी। उन्हें यह फिक्र ही नहीं थी कि माल कौन बेचेगा और कौन खरीदेगा? आज वेही गांव वाले एक पैसे का नमक, तेल, हल्दी वगैरा लेने के लिये शहरों की ओर हाट-पैठों में दौड़े हुए जाते हैं।

गांवों में अब अपनापन कुछ नहीं रहा . जो कुछ भी है वह परायापन है। भारतीय नगरों का हो तो भी दिल को सन्तोष कर लिया जाय, नहीं वहां तो प्रत्येक वस्तु विदेशी नजर आरही है। नगरों में तो पैदा ही क्या होता है? जो कुछ भी हो सकता है वह गांवों ही में हो सकता है सो गांवों के उद्योग धन्धे इस प्रकार मिट्टी में मिल गये। यही कारण है कि अब गांव चाहे रेल के पास हो या सैकड़ों मील दूर हो वहां विदेशी वस्तुएं बहुतायत से दिखाई पड़ेंगी। विदेशी वस्त्र, दियासलाई, नमक, मिट्टी का तेल आदि चीजें तो हरेक के घर में अवश्य ही मिल सकेंगी। यह उन्हीं गांवों की दशा है जो इन वस्तुओं को उत्पन्न करके दूसरों को दिया करते थे। आज कारखानों पुतलीघरों के प्रभाव से और बढ़ती हुई भयानक दरिद्रता के कारण वेही गांव विदेशी (सात समुद्र पार की) चीजों से अपनी आवश्यकताएं पूरी कर रहे हैं।

उद्योग धन्धों के नष्ट हो जाने से गांवों की सामाजिक और आर्थिक दशा बहुत ही बिगड़ गई। व्यवसाइयों की दशा बहुत ही खराब हो गई। उन्हें यातो अपना पुश्तैनी हुनर मिट्टी में मिला देना पड़ा है या खेती और मजदूरी करनी पड़ी है। इन्हीं गांवों के भोलेभाले लोगों को पेट की धधकती हुई आग बुझाने के लिये शर्तबन्धे कुली बनकर फिजी, मोरीशस, जावा आदि टापुओं में जाना पड़ा है; जहां वे अपना नाटकीय जीवन बिता रहे हैं। इन बातों से ग्रामीणों के चरित्र पर, स्वभाव पर

और स्वाभिमान पर कितना भयंकर परिणाम होता है, इसे वही अनुभव कर सकता है जिसे दरिद्रावस्था में दिन गुजारने पड़े हैं और जठर-ज्वाला शांत करने के लिये अपना जीवन कौड़ियों के मोल बेचना पड़ा है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि ये लोग इस कारण सद्गुणों से शून्य, गन्दे, मैले, निराश, पतित होकर नशे बाज, शराबी, जुआरी बन जावें और अपना मनुष्य जीवन पशु जीवन से भी निकम्मा करलें।

हम पीछे लिख आये हैं कि उद्योग धन्धों के लिये श्रम की बड़ी आवश्यकता है। जो श्रम करता है वही धनी है। भारत के लिये प्रायः यह कहा जाता है कि यहां के लोग मेहनत से मुंह चुराते हैं। इसमें भारतीयों का दोष नहीं है। यह तो यहां के जल वायु का कारण है। शीत देशों के रहने वाले मेहनती अधिक होते हैं और गर्म मुल्कों के रहने वाले उतना श्रम नहीं कर सकते। यहां के जल वायु में, यहां की गर्मी में लगातार बहुत देर तक मनोयोग-पूर्वक काम करना असम्भव है। मजदूर लोग दो घंटे से अधिक लग-भिड़कर काम नहीं कर सकते। तम्बाखू पीने खाने के बहाने, पेशाब के बहाने या कोई और दूसरी हाजत रफा करने के बहाने थोड़ी-थोड़ी देर में उन्हें आराम लेने की जरूरत पड़ ही जाती है, तथापि यह कहा जा सकता है कि वैसे भी भारतीय श्रमजीवी मेहनत से मुंह चुराते हैं। पास में थोड़ा बहुत खाने के लिये हुआ कि फिर वे मेहनत की तरफ मुंह भी नहीं करते आराम-

तलबी में अपना वक्त गुजारते हैं। देखा गया है कि जब तक किसानों के पास खाने के लिये रहता है वे बड़े ही आलसी बनकर वक्त गुजारते हैं और जब खाने को नहीं रहता तब वे काम करने के लिये तैयार होते हैं। यह तो लोगों के मुंह से आपने सुना ही होगा कि :—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका यों कहे, सब के दाता राम॥

इत्यादि कहावतें हमारे ग्रामीण भाइयों को और भी आलसी बनाने में सहायक हो गई हैं। इसके अलावा साधु, फकीर अपना मतलब बनाने के लिये लोगों में प्रायः ऐसे ही उपदेश किया करते हैं—"बाबा! इस दुनिया में धन दौलत किस काम की? जैसे आये हो तैसे ही जाओगे। माया-मोह बढ़ाना बेवकूफी है। संसार अनित्य है, क्षणभंगुर है। तुम्हारे साथ एक पैसा भी नहीं जावेगा।" इत्यादि बातों से गांवों के अल्प-बुद्धि लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। वे आलसी होते जाते हैं। सारांश यह है कि अब देहाती लोगों को चाहिये कि आलस छोड़कर मेहनत करना सीखें। अपने जीवन का हर एक क्षण बहुमूल्य समझकर उसे न खोवें। खेती बाड़ी से अथवा दूसरे किसानी कामों से जब कभी अवकाश मिले तभी कोई दूसरा उद्योग करते रहें। गांवों में कौन-कौन से उद्योग धन्धे लाभदायक और सरल पड़ेंगे, इसी बात का यहां हम विचार करेंगे।

देहातों में कलों से काम करने की जरूरत नहीं है और न अभी ऐसा होना सम्भव ही है। विदेशों में तो अब छोटे बड़े सभी धंधे मशीनों की सहायता से होने लगे हैं। परन्तु भारत में अभी तक हाथों की सहायता से ही सब काम होरहे हैं। बढ़ई, लोहार, सुनार, कुम्हार, राज, जुलाहा, दर्जी, चमार, हलवाई इत्यादि सभी लोग हाथों ही से काम करते हैं। इनके औजार भी पुराने तर्ज के ही हैं। यहां जो कुछ भी कल कारखाने दिखाई पड़ते हैं वे विदेशियों के संसर्ग से हुए हैं। हम देहात के लिये निम्न धन्धों को उचित समझते हैं:—

१. खेती।

२. खेती से सम्बन्ध रखने वाले द्रव्यों को अधिक उपयोगी बनाकर पास के नगरों या कस्बों में बेचना।

३. रुई निकालना, सूत कातना, दरी, निवार, फीते, गलीचे वस्त्र आदि तय्यार करना।

४. सुतारी, लोहारी, सोनारी, दर्जी वगैरः का काम करना।

५. जूट, सन वगैरह की सुतलियां और रस्सी; रस्से वगैरह बनाना। सुतलियों से बोरे, थैले आदि के लिये पट्टियां बुनना।

६. फूल, फूलवाद, शाक भाजी, वृक्ष, वनस्पति आदि के बीज, पौदे, कलमें आदि तय्यार करना।

७. फूलों के वृक्ष लगाकर शहरों में फूल या फूलों से बने हार, मालाएं वगैरह खपाना। फूलों से अर्क, इत्र और तेल

वगैरा तय्यार करना।

८. जंगलों में उपयोगी वृक्षों की परवरिश करना और उनकी लकड़ी को उपयोगी बनाकर अथवा उनकी नगरों में खपने लायक वस्तुएं, फर्नीचर वगैरा बनाना।

९. जंगल की जड़ी बूंटियों का संग्रह करना और उन्हें शहरों में बेचना।

१०. खानों से निकलने वाले द्रव्यों का संग्रह करना।

११. पशुओं के खाद्य जैसे ल्यूसर्न वगैरा घास पैदा करना।

१२. रेशम के कीड़े पालना और रेशम पैदा करना।

१३. जंगली चीजें जैसे शहद, मोम, लाख, गोंद, कोयला, कत्था, हर्र, बहेड़ा, आंवला वगैरा संग्रह करके बेचना।

१४. जो निम्न जाति के लोग होंवे चमड़ा, हड्डी, सींग, सरेस वगैरा तय्यार करें।

१५ भील, बागरी, हिंसक लोग मुर्गे-मुर्गी पालकर उनके अंडों का व्यापार, मछलियों का व्यापार, सूअर वगैरा जंगली प्राणियों के सूखे मांस का व्यापार करें।

१६. शिल्पी लोग पत्थरों की अच्छी से अच्छी वस्तुएं बनाकर नगरों में भेजें।

१७. कसीदा करने वाले लोग कसीदे का काम करें।

१८. कच्चे माल को पक्का बनाकर बाजारों में भेजें। जैसे गन्ना पेरें और उससे गुड़ या शक्कर तय्यार करके देवें।

तेल के द्रव्यों का तेल निकाल कर देवें।

१९. चमार लोग यदि अच्छे ढंग से चमड़ा पकाने लग जावें तो विदेशों में बहुत खपत हो। गांवों में चमड़ा तय्यार करने की संस्थायें (टेनरीज) स्थापित होनी चाहिये।

२०. तम्बाखू के पत्ते न बेचकर उसमें बीड़ी, सिगरेट, चुरट, गुड़ाखू, हुलास, सुगन्धित खाने की तम्बाखू वगैरा तय्यार करके देनी चाहिये।

ऐसे अनेक धन्धे हैं जो गांवों में रहकर ही गांवों के निवासी बिना किसी कष्ट के इन्हें कर सकते हैं। हमारे विचार से तो ऐसा कोई धन्धा ही नहीं जो गांवों में नहीं किया जा सके। हां, वर्तमान समय में ऊपर लिखे रोजगार धन्धों को प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। किसी न किसी रूप में अब भी उपरोक्त धन्धे गांवों में चल रहे हैं, परन्तु ये नाम मात्र ही के लिये हैं, उनका होना न होना एकसां है। कल पुरजों द्वारा हुए काम के मुकाबिले में काम करने का युग है। थोड़ा पुरानापन छोड़ने की जरूरत है, किन्तु एक दम नवीनता की भी जरूरत नहीं है। ये धन्धे ऐसे हैं जो फुरसत के समय में भी किये जा सकते हैं। परन्तु इतना जरूर है कि इन धन्धों को अच्छी तरह कर सकने तथा उपयोगी बनाने के लिये 'ग्राम्य शिक्षा' की सबसे पहिले जरूरत है। अक्सर ज्ञान के साथ ही साथ व्यवहारिक ज्ञान भी सिखाया जाना चाहिये। इसके अलावा शिल्प-विद्या की शिक्षा देहातों के लिये प्रत्येक

मनुष्य के लिये लाजिमी होनी चाहिये।

या तो गांवों से अच्छे होनहार विद्यार्थियों को लेकर शिल्प आदि कार्यों की शिक्षा दीक्षा दिलाकर गांवों में इनका प्रचार होना चाहिये, या इन विषयों के ज्ञाता लोगों को गांवों में जाकर ग्रामीणों को ये हुनर सिखलाने चाहिये। इसके लिये सरकार का ध्यान आकर्षित करने की बड़ी सख्त जरूरत है। परन्तु केवल सरकार के भरोसे रहकर भी यह काम पूरा नहीं पड़ सकेगा; इसलिये देश के शुभचिंतकों को यथासम्भव शीघ्र ही इस ओर अपनी नजर डालना चाहिये। अभी जब तक सरकार अपना पैसा भारतियों के पढ़ाने लिखाने में खर्च करना नहीं चाहती तब तक देश सेवा की दोहाई पीटने वाले नेताओं को इस बात का प्रबन्ध करना चाहिये। नेता लोगों को चाहिये कि शहरों के ऐशो-आराम में अपना वक्त न गुजारकर अब गांवों की तरफ अपना कदम बढ़ावें। थोड़ा सुख में अन्तर अवश्य आवेगा, किन्तु अब देश के लिये सच्चे कष्ट सहने की जरूरत है। जेल की तंकलीफों से तो नेतागिरी और वाहवाही मिलती है; परन्तु गांवों में तकलीफ पाकर उन देहाती भाइयों की सेवा करने में कुछ भी नहीं मिलेगा। बंगले, मोटर, चाय, फल फूल वगैरह मौजें वहां नहीं मिलेंगी। सच्चे देश प्रेमियों को अब अविलम्ब गांवों की तरफ जाना चाहिये।

पशु-पालन।

पशुओं की धन में गणना है। यह किसानों की पूंजी है।

जिसके पास जितने अधिक पशु होते हैं वह उतना ही अधिक धनी माना जाता है। जमीन को जिस तरह किसान की इज्जत माना है उसी तरह पशु-धन भी कृषक को इज्जत देता है। पहिले किसी जमाने में देहातों में पशु धन बहुत ज्यादा होता था। गांव के लोग अपने गांव में पशुओं की संख्या अधिक बताने में अपना फख्र समझते थे। कोई भी ऐसा किसान नहीं था जो दस पांच ढोर न रखता हो। गरीब से गरीब आदमी भी बैल, गायें और भैंसें रखता था; आज वह जमाना नहीं है। पहिले जिनके यहां सैकड़ों गौएं रहती थीं आज उन्हीं के यहां खेत जोत ने के लिये बैल जोड़ी का भी ठिकाना नहीं! ऐसा क्यों हुआ? इसका उत्तर यहां लिखने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि हम जानते हैं हमारे पशु चमड़े, मांस और हड्डियों के व्योपारियों द्वारा लाखो की संख्या में कसाइयों की छुरियों के नीचे रखे जाते हैं। जरा महर्षि पाराशर के वचन पढ़िये:—

"हलमष्ट गवंधर्म्यं षड्गवं व्यवसायिनाम्।
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवञ्च गवाशिनाम्॥"

आठ बैलों से एक हल चलवाना धर्म है। व्यवसायी लोग ६ बैलों से हल चलवा सकते हैं। जो चार बैलों पर हल चलाता है वह क्रूर निर्दय है और दो बैलों से हल जोतने वाला गौघाती है। आज अपनी दशा देखिये। सभी किसान एक हल पीछे दो बैल रखते हैं। एक हल के लिये चार छः बैल रखने वाला करोड़ों में शायद एक भी न निकले। वह बैल जोड़ी

दिन भर हल हांकती है और फिर गाड़ी में भी वही जोती जाती है। यह है हमारा पशु पालन और इसी का यह परिणाम है कि भारतीय पशु-धन दिन प्रतिदिन नाश हो रहा है।

परिस्थिति ने किसानों को इतना विवश कर दिया है कि कम से कम बैल रखकर अपना काम का प्रयत्न करते हैं। जिस बैल जाति पर कृषकों के जीवन मरण का प्रश्न है, जब उसी की यह दशा है तो गौ आदि दूसरे पशुओं का तो पूछना ही क्या है! कृषकों का सारा खेल गौजाति पर है। भैंस और पाड़े उतने काम की चीज नहीं हैं जितने कि गौ और बैल, पाड़े खेती के काम की वस्तु नहीं है। वे वैशाख, जेठ की कड़ी धूप में बैलों की भांति महनत नहीं कर सकते। अतएव किसानों के लिये पशु-धन में गौजाति सर्व श्रेष्ठ है। वैसे भैंसे-पाड़े, घोड़े-घोड़ी, बकरे-बकरी, भेड़, शूकर वगैरः सभी पशु-धन में गिने जासकते हैं; परन्तु अत्यंत लाभदायक पशु, पशु-धन में गौजाति ही अभी तक सिद्ध हुई है। अधिक विस्तार से हम यहां लिख नहीं सकते अन्यथा हम अच्छी तरह सिद्ध कर सकते हैं कि गोधन ही पशु-धन में सब से अधिक उपयोगी है अस्तु।

पशु पालन में हमारा कृषक समाज निपुण नहीं है और दरिद्रता इतनी भयंकरता से नृत्य कररही है कि मनुष्यों का ही पेट भरना कठिन है तो पशुओं की तो बात ही क्या है। जरा अधपेट रहने वालों के आंकड़े देखिये:—

सन्	१९१२ में	५४९०००००	आधे पेट भोजन पर रहे।	
,,	१९१३	८४८०००००	,,	,,
,,	१९१४	१०१४०००००	,,	,,
,,	१९१६	४५१०००००	,,	,,
,,	१९१८	५४५०००००	,,	,,
,,	१९२०	६३७०००००	,,	,,
,,	१९२३	७३१०००००	,,	,,
,,	१९२६	९६८०००००	,,	,,

औसत निकालकर देखा गया तो जवान स्त्री पुरुषों को ५४ फी सैकड़ा आधा भोजन मिलता है या यों कहिये कि देश के आधे जवान स्त्री पुरुषों को आधा भोजन पाकर ही जीवन व्यतीत करना पड़ता है। जब मनुष्यों की यह दशा है तो पशुओं की दशा क्या होनी चाहिये, यह समझदार मनुष्य सहज ही में अनुमान कर सकता है।

जिस प्रकार अन्न की मंहगी होती गई उसी तरह साथ-साथ ही देश में बेकारी और दरिद्रता भी बढ़ती गई। मनुष्योपयोगी पदार्थ ही मंहगे हो गये हों सो नहीं, पशुओं का चारा तक भी हद से ज्यादा मंहगा हो गया है। जब मनुष्य को मंहगी और दुर्भिक्ष ने घर दबोचा तब उसने पशुओं के अधिकारों को छीन-छीनकर अपना जीवन निर्वाह करना आरम्भ कर दिया। वह जमीन जो गोचारण-भूमि के नाम से पशुओं की घास के लिये सुरक्षित थी लोगों ने अन्न बोने के काम में ले

ली। फल यह हुआ कि जो घास आज से २० वर्ष पहिले दो तीन रुपये हजार मिल जाया करती थी वही अब १२ से १५ रुपये हजार तक मिलती है। पशुओं का बुरी तरह नाश हो रहा है। प्रति वर्ष करोड़ों मोटे ताजे पशु कसाइयों की छुरियों के नीचे कट जाते हैं। करोड़ों मालिकों की बेपरवाही से मौत के घाट उतर जाते हैं और करोड़ों बिना तृण के छटपटा कर मर जाते हैं। ज्येष्ठ वैशाख के समाप्त होते होते करोड़ों गायें बिना भोजन के मरती देखी जाती हैं। मालवा प्रांत के गांवों को आषाढ़ के आरम्भ में जाकर देखिये फी गांव में सैकड़ों गौ-बैल बिना तृण के मरते हुए दिखाई पड़ेंगे।

भारत में गोचारण-भूमि का अत्यन्त अभाव है। गोचर-भूमि के लिये सब जगह हाय-हाय मची हुई है। भारतवर्ष में जहां गौ को "माता" जैसे पवित्र शब्द से सम्बोधित किया जाता है वहां उसके चरने को चारा तक नहीं! जरा ध्यान से देखिये:—

जर्मनी में—६,५१,२९,५३० एकड़ भूमि पर खेती और २९,३९,७०० गोचरभूमि है।

न्यूजीलैण्ड—२,८०,००,००० एकड़ भूमि पर खेती और २,७२,००,००० गोचर-भूमि है।

वेल्स प्रदेश—४,७३,८४,४८६ एकड़ भूमि पर खेती और १५,२७,५३४ गोचरभूमि है।

स्काटलैण्ड—१,९६,२९,७७७ एकड़ भूमि पर खेती और ११,१२,२६९ गोचर भूमि है।

इंग्लैण्ड—३,२९,९०,२५७ एकड़ भूमि पर खेती और १०,९६,०९५ गोचरभूमि है।

इनके अलावा आस्ट्रेलिया, हालैण्ड, स्विट्जरलैण्ड और अमेरिका आदि देशों में काफी गोचरभूमि है। साथ ही इसके एक बात और भी है कि उन देशों में पशुओं के खाद्य पदार्थ खेतों में बोये जाते हैं। वे अपने पशुओं को बारहों महीने हरा चारा खिलाते हैं।

पशु पालन के लिये गोचर-भूमि सबसे पहिली जरूरी बात है। गोचर-भूमि की कमी होते हुए पशु पालन नितांत असम्भव है। स्मृतिकार मनु महाराज ने कहा हैः—

धनुः शतं परीहारो ग्रामस्यस्यात्समन्ततः।
शम्या पातास्त्रयोवापि त्रिगुणो नगरस्यतु ॥ २३७ ॥
तत्रापरिवृत्तं धान्य विहिंस्युः पशवोयदि।
नतत्र प्रणयेद्दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥ २३८ ॥
(मनु. अ. ८)

गांव के चारों तरफ ४००-४०० हाथ अथवा तीन बार लकड़ी फेंकने से जहां तक पहुँचे उतना स्थान गोचरभूमि रखना चाहिये। और शहर के पास इस प्रमाण से तिगुनी ज्यादह भूमि गोचारण के लिये छोड़नी चाहिये। इस स्थान में

बिना आड़ किये धान्य को यदि पशु नष्ट करें तो राजा को चाहिये कि पशु पालकों को कुछ भी दण्ड न दे। इसी आशय से मिलता जुलता याज्ञवल्क्य, पाराशर आदि ने भी लिखा है। परन्तु अब भारत की हालत पर विचार कीजिये। वर्तमान समय में पशु-पालन लोगों को बहुत ही अखरने लगा है। गांव के पास तक की भूमि में खेती होती है और आते जाते पशुओं को और पालने वाले को घर बैठे की लड़ाई रोज करनी पड़ती है। शहरों में ढोरों को बन्द करने के खिड़क म्युनिसिपेलिटी की ओर से बने होते हैं। पशु ने गलती से सड़क छोड़कर इधर उधर मुंह दिया कि चट से खिड़क की हवा खिलादी जाती है। इस कष्ट से भी लोगों ने पशुपालन छोड़ दिया; क्योंकि पशु को इसका ज्ञान नहीं कि वह दूसरे के बाग बगिया में न जावे और अपने मालिक पर जुर्माना न करावे। मालिक कब तक उनकी दुम पकड़े फिरता रहे! अस्तु।

गांवों में खिडक का कोई झगड़ा नहीं पाया जाता। हां! शहरों के पास के गांव वाले कभी-कभी ढोरों को लाकर शहर के खिडकों में बन्द कर जाते हैं। पशु पालन में इस प्रकार की सख्ती भी बहुत बाधक हो रही है। गांवों के लोगों को चाहिये कि सख्ती से काम लेना छोड़ दें। प्रत्येक गांव के पटेल या नम्बरदार को यह अपना धर्म समझना चाहिये कि वह अपने गांव के ढोरों की संख्या के अनुसार उनके चरने के लिये जमीन मुफ्त छोड़े। दिखने में ऐसा करना कुछ

आर्थिक हानि अवश्य पहुंचावेगा, किन्तु कुछ वर्षों में इसी से लाभ भी होगा। भारत की गोचर भूमि का दिग्दर्शन कराने के लिये यहां एक नक्शा देते है, इससे सब स्पष्ट हो जावेगाः—

	खेती	पड़त	खेती के अयोग्य	ऊसर	जंगल
बृटिश सीमा	२२२४८५२७७	१५४६०२२९७	१५१८४६६१७	४२६१९७०३	८१९७२३१२
देशी राज्य	६४१६६४२८	१५००१७६५	२३२६९०३०	१३६३५००८	२१५९९८२६
जोड़	२८६६११७०१	१६९६०४०६२	१७५११५६४७	६३२५४७११	१०३५७२१३८

इस वक्त २८,६६,५१,७०५ एकड़ भूमि खेती के काम आरही है और बाकी ८७,६२,६७,२९५ एकड़ जमीन में गांव, नगर, सड़कें, रेल, नदी और तालाब वगैरह हैं। इनके अलग-अलग आंकड़े नहीं मिलते; इसलिये इनमें कितनी-कितनी एकड़ भूमि रुकी हुई है यह बतलाना असम्भव है। इनके अलावा पड़त जमीन, खेती के अयोग्य जमीन, ऊसर और जंगल के आंकड़े ऊपर नक्शे में दिये ही गये हैं। इस विषय के गणितज्ञों का कथन है कि लगभग ६४,००,००० एकड़ भूमि चारे के लिये है, इससे ज्यादा नहीं है। गोचर भूमि जिसे कहा जाता है वह तो भारत में नाम मात्र को भी नहीं है। जो कुछ भी खराब भूमि पड़ी हुई है, जो किसी भी काम की नहीं है, जिसमें खेती नहीं हो सकती उसमें जो चारा बारिश होने पर उत्पन्न हो जाता है वही पशुओं के खाने के लिये होता है। दुर्दैव से यदि पानी अच्छा न बरसे, या कुछ देर से बरसे तो फिर यहां का दृष्य देखिये, ढोर बेमौत मरने लगते हैं, वृक्षों के पत्तों को काट-काट कर उन्हें चराया जाता है। जब पत्ते भी नहीं रहते तब जो कुछ भी बीतती है उसे लिखकर बता देना कठिन है। यहां चारे की यह दशा है; परन्तु विदेशों में गोचारण भूमि की बहुलता से इतना अधिक घास पैदा होता है कि अपने देश के ढोरों को खूब अच्छी तरह खिलाने के बाद वे बचे हुए चारे को भारतीय पशुओं के लिये भेजते हैं। हमारे देश के पशुओं के खाद्य का इसी से

पता चल सकता है कि यहां प्रतिवर्ष लाखों रुपये की घास विदेशों से आती है तब कहीं हमारे ढोरों का पेट भरता है। जरा हृदय पर हाथ धरकर एकान्त में अपनी इस अधोगति पर विचार कीजिये। कितने दुःख की बात है कि हम अपने ढोरों को पेट भर के घास तक नहीं खिला सकते। बस इस चारे की कमी के ही कारण प्रतिवर्ष हमारा बहुत-सा भारतीय पशु-धन बेमौत मारा जाता है। करोड़ों पशु मृतवत् अपनी जिन्दगी व्यतीत करते हैं। घास के अभाव से दरिद्र भारतीय अपने पशु कसाइयों के हाथ बेचते चले जा रहे हैं।

समस्त भारत वर्ष में इस वक्त गौवंश की संख्या १४ करोड़, ३४ लाख २ हजार, ५८८ है। इनमें ९ करोड़, ०९ लाख, ३३ हजार, ५४८ बैल भी शामिल हैं। गायें और बैल कृषिजीवी लोगों के आश्रय हैं। इनकी बरबादी होना, कृषक समाज का संहार है। पूर्व समय में यहां असंख्य गौवंश था। एक-एक गोपालक के यहां लाखों गाय बैल पाले जाते थे। हमारे प्राचीन इतिहास ग्रंथ इस बात के साक्षी हैं। पहले जमाने में राजा लोग भी लाखों, करोड़ों गायें पालते थे, वे जानते थे कि—

"धनंचगोधनं, धान्यं स्वर्णादयोनृथैवाहि।"

स्वर्ण धान्य आदि में गोधन ही सर्वोत्तम धन है। उस युग के सम्पत्तिशास्त्र में गोधन प्रथम धन था तभी तो जहांतहां यह लिखा मिलता है कि:—

कर नृत्य आरम्भ हो जाय !! जो कुछ भी बचे खुचे पशु हैं उनकी भी दशा कुछ अच्छी नहीं है। तृण खाने वाले पशु इस समय भारत में लगभग २५ करोड़ हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यहां एक एकड़ भूमि २८ पशुओं के लिये है ! इन में कई पशु जैसे गधे, भेड़ बकरी ऊँट आदि तो ऐसे जीव हैं, जो तृण पर ही अवलम्बित नहीं हैं। अधिकतर वृक्षों की पतियाँ खाकर निर्वाह करते हैं।

पशु पालन के विषय में यहां यह एक आवश्यकीय प्रश्न है कि अट्ठारह-उन्नीस करोड़ घास चरने वाले जानवरों के लिये काफी गोचरभूमि सुरक्षित रखी जानी चाहिये। प्रति पशु ३॥ बीघा जमीन के हिसाब से गोचर भूमि छोड़नी चाहिये अर्थात् २४ लाख, ५४ हजार, ६९२ एकड़ जमीन गोचरभूमि के नाम से सुरक्षित रखना अत्यन्त आवश्यक है। इतनी भूमि रखे बिना पशुपालन कठिन है। हमारे देशकी $\frac{1}{3}$ भूमि गोचरभूमि के लिये होना जरूरी बात है। अर्थात् गांव के नम्बरदार या पटेल का यह कर्तव्य कर्म है कि अपने गांव के पशु पालनार्थ गांव की सब भूमि का $\frac{1}{3}$ भाग चारे के लिये रखे। कुछ लोगों का कहना है कि एक पशु के लिये एक बीघा भूमि ही काफी होती है। विदेशों में लगभग इसी हिसाब से गोचरभूमि छोड़ी जाती है। परन्तु एक बीघा जमीन एक पशु के लिये तभी काफी हो सकती है जब कि वैज्ञानिक पद्धति से पशुओं के लिये चारा पैदा किया जाय। यदि गोचरभूमि के लिये हमारा

देहाती समाज कुछ उद्योग करे तो शीघ्र ही पशुधन पहिले की तरह भारत में बढ़ सकता है और आईन-ए-अकबरी के लेखानुसार फिर एक पैसे सेर दूध मिलने लग जाय, देश में नवजीवन आजाय।

गोचरभूमि के लिये सरकारी नीति भी अत्यन्त बाधक है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत की जमीन पर सरकारी लगान इतना अधिक है कि गरीब किसान उसके भार से बिलकुल दब गये हैं। इस लगान की बढ़ती से गोचरभूमि भी खेत बनाली गई। क्योंकि पशु-पालन के लिये इतना ज्यादा लगान कोई भी नहीं दे सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि पशु-पालन के लिये सब से पहिले उनके खाने को घास का इन्तजाम होना चाहिये अर्थात् गोचर-भूमि का प्रबन्ध होना चाहिये।

गांव वालों को चाहिये कि मिल कर इस पर विचार करें और इस बात का प्रयत्न करें कि कम से कम खर्च में पशु अच्छी तरह पाला जासके। अब हम गोचरभूमि के अतिरिक्त दूसरी बातों पर विचार करेंगे।

पशु पालन में एक बाधा और भी है कि यहां पर हमारे पशुओं का बध, चमड़ा, सूखामांस, हड्डी और रक्त के व्यापार के लिये होता है। अब हम यहां से बाहिर जाने वाले चमड़ों की तादाद, देखते हैं तो आँखें खुल जाती है। सन् १९१९ में १९ करोड़ १५ लाख ५० हजार रुपयों का सूखा चमड़ा भारत से विदेशों को भेजा गया था। सन् १९१२ में १३

करोड़ १ लाख ७९ हजार रुपयों का चमड़ा गया था सात वर्ष में ७ करोड़ के चमड़े की रफ्तनी ज्यादा हुई। आजकल तो प्रति वर्ष लगभग २० करोड़ रुपयों का चमड़ा बाहिर जाने लगा है। इसी प्रकार हमारे देश के पशुओं की हड्डियां भी बहुतायत से बाहिर जाती हैं। विदेशी लोग हड्डियों के खिलौने, दस्ते, खाद वगैरह तैयार करते हैं और शक्कर की सफाई में काम लाते हैं। सूखे मांस की तिजारत बर्मा के साथ होती है। कहने का मतलब यह है कि यदि चमड़ा, हड्डी, मांस और खून की तिजारत विदेशों से न हो तो यहां इतने पशु नहीं मारे जावें। अच्छे-अच्छे मोटे ताजे, बलवान पशु केवल मांस और चमड़े के लिये लाखों की संख्या में काट दिये जाते हैं। जितना पशु-संहार भारत में हो रहा है, उतना दूसरे किसी भी मुल्क में नहीं होता। यहां उपयोगी पशुओं का बड़ी बेरहमी से बध कर दिया जाता है, वहां उपयोगी पशुओं का मारना तो दूर उन्हें कष्ट पहुंचाना भी जुर्म माना जाता है। इस सारी दुर्दशा का कारण हमारी दरिद्रता और चारे की कमी है। गायों का और बैलों का मूल्य हद से ज्यादा बढ़ चुका है। साधारण स्थिति के किसान की हिम्मत नहीं पड़ती कि वह खेती के काम के लिये एक अच्छी जोड़ी बैल खरीद सके। हम लोगों को पशु-पालन पर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये, नहीं तो एक न एक दिन खेती के लिये बैलों का मिलना असम्भव हो जावेगा। दूध घी के दर्शन दुर्लभ हो जावेंगे। जो गायें बची हुई हैं

उनकी परवरिश इस बेढंग से हो रही है कि, उनसे अच्छी तरह घी, दूध ही नहीं मिलता। लोगों को पशु पालन एक प्रकार का खर्चा बन रहा है। भार हो रहा है। विदेशों में गोपालन की पद्धति इतनी अच्छी है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है। हमारी दृष्टि में वे लोग सच्चे गोभक्त ठहरते हैं। हम लोग तो चमड़े से ढांकी हुई हड्डियों के पिंजरे को गौमाता कहकर ही अपने कर्तव्य की इति श्री कर बैठते हैं। आज इंग्लैंड में फी गाय पीछे औसत से १२ सेर दूध आता है। किन्तु भारतवर्ष में ११ छटाक दूध भी प्रति गौ नहीं आता! कैसा दुःखप्रद गोपालन है? इस प्रकार गोपालन से देश को जो भयंकर हानि हो रही है वह हमें हमारे सर्वनाशक और अग्रसर करने में सहायक हो रही है। दूध, घी के अभाव में देश की शक्ति नष्ट हो गई। विविध प्रकार के रोग हम निर्बलों पर आक्रमण करते चले आ रहे हैं। सन १९१८ के इन्फ्ल्युएन्जा नामक बुखार ने इस भारत के ६०।७० लाख मनुष्य खत्म कर दिये, जब कि उस वक्त सारी पृथ्वी पर ३५ लाख ही इन्फ्ल्युएन्जा से मरे थे। दूसरे देशों के रहने वाले यथेष्ट दूध, घी प्राप्त करने के कारण सबल हैं। एकाकी उन पर कोई रोग अपना आक्रमण नहीं कर सकता। परन्तु भारत—भारत में दूध, घी तो अलग रहा आधे मनुष्य भी भर पेट अन्न भी नहीं पाते! उधर विदेशी व्यापारी अपने देशों की दूध घी की आवश्यकता पूरी करने के बाद भारत में अपना जमा हुआ नकली दूध

भेजकर पैसा कमा रहे हैं। सन १९२६-२७ में हमने लगभग १००००००) रुपयों का सूखा नकली दूध खरीदा है। नकली घी भी आ गया है। यह सब पशु पालन की बेखबरी की बदौलत हो रहा है।

पशु पालन के लिये सबसे पहिले:—

१. चारे का, गोचर भूमि का प्रबन्ध होना चाहिये। २. नसलें सुधारने का उपाय करना चाहिये। ३. पशुओं के स्वास्थ्य को ठीक रखना चाहिये। ४. पशु खाद्य उन्हें यथेष्ट देना चाहिये। ५. दुग्ध बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। ६. डेरीफार्म के ढंग पर पशु पालन, दूध का व्यापार करना चाहिये इत्यादि।

हम गोचर के विषय में ऊपर बहुत कुछ लिख आये हैं। अब पशुओं की नसलें सुधारने के विषय में कुछ कहना है। हमने देखा है कि पशुओं का वंश अच्छा उत्पन्न करने के लिये लोग ध्यान नहीं देते। सांडों की ओर सबसे प्रथम ध्यान देना चाहिये। पहिले जमाने में मृतव्यक्ति के नाम पर "वृषोत्सर्ग" नामक एक धार्मिक कृत्य बहुत होता था। अब दिन प्रतिदिन इसमें कमी आ रही है। "वृषोत्सर्ग" में छोड़ा हुआ बैल सांड के नाम से पुकारा जाता है। वह स्वतंत्रता पूर्वक घूमता है। वह किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं मानी जाती। वह अदण्ड्य होता था। आजकल सांड बहुत कम देखने में आते हैं। गांव वालों को चाहिये कि अपने पशुओं के लिये

अच्छे बढ़िया सांड रखें। ५० गौओं में एक सांड रखना चाहिये और उसको भी ब्रह्मचर्य से रखने का विशेष ध्यान रखने की जरूरत है। जिसे सांड बनाने की इच्छा हो उसे बचपन ही से अपनी माता का छुट्टा दूध पीने देना चाहिये अर्थात् उसकी मां का दूध नहीं निकालना चाहिये और उसकी माता को भी दूध बर्द्धक पदार्थ खिलाना चाहिये। इस प्रकार जो हृष्ट-पुष्ट, दीर्घकाय, खूब सूरत बछड़ा हो उसे सांड बनाना चाहिये। पुट्ठों पर त्रिशूल और चक्र का चिन्ह लगाने की जरूरत नहीं है, यों भी सांड रखा जा सकता है। हिसार और हरियाने की तरफ के सांडों से अच्छी नस्ल पैदा होती है। भैंसों के लिये पाड़े रोहतक हिसार की तरफ अच्छे मिल सकते हैं। मतलब यह है कि दोगली नस्ल के अच्छे सांड गाय और भैंसों के लिये काम में लाने चाहिये। आजकल तो कई जगह भारत में विदेशों से सांड लाकर रखे गये हैं। उनसे नस्ल में सुधार हुआ है; इसलिये गायों और भैंसों के लिये अच्छे सांड हरेक गांव में रखने की जरूरत है। इसी तरह २०-२५ गांव पीछे एक घोड़ा सांड भी रखना चाहिये।

सांड के अच्छे होने से नस्ल तो अच्छी होती जायगी, किन्तु साथ ही साथ गौ और भैंसों का दूध भी बढ़ जावेगा। लोग अच्छे सांड रखने का ध्यान नहीं रखते इसी कारण पशु-धन धीरे-धीरे निर्बल, रोगी और अल्पायु हो चला है। आशा

है हमारे देहाती भाई अपने मादा पशुओं की नस्लें शीघ्र ही सुधारने की चेष्टा करेंगे।

पशुओं के स्वास्थ्य की तरफ विशेष रीति से ध्यान रखना चाहिये। उन्हें उत्तम भोजन, शुद्ध जल, शुद्ध हवा और प्रकाश में रखना चाहिये। हम देखते हैं कि गांवों के लोग खराब से खराब चारा, खराब से खराब पानी अपने पशुओं को खिलाते पिलाते हैं। शुद्ध हवा के लिये भी विशेष ध्यान नहीं देते। उनके खड़े रखने या बांधने की जगह बहुत ही गंदी और मैली होती है। उनको सड़ी गली, खराब, अन्टशन्ट चीजें नहीं खाने देनी चाहिये। उनकी बीमारी पर बेहूदा इलाज नहीं करना चाहिये। अक्सर हर एक बीमारी में डाम (गरम करके दागने की पद्धति) देने का रिवाज गांवों में बहुत है यह अनुचित है। पशुओं की चिकित्सा, चिकित्सा-पद्धति से ही होनी चाहिये। पशु-चिकित्सा पर आज बहुत से ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। किसानों को चाहिये कि उन्हीं के अनुसार रोग निर्णय करके दवा दारू करें। कैलासवासी श्रीमन्त माधवराव महाराजा साहब की यह प्रबल इच्छा थी कि ग्रामों का सुधार हो। उन्होंने अपने राज्य (ग्वालियर) में इसके लिये बहुत कुछ प्रयत्न भी किये। "जमींदार हितकारिणी सभा" स्थापित करके उसके द्वारा गांवों-गांवों में उपदेशकों को भेज कर वर्षों तक प्रचार कराया। इतना ही नहीं आपने खुद एक

"तिब्बे हैवानात" नामक सचित्र पुस्तक भी लिखी है जिसमें पशु-चिकित्सा वर्णित है।×

दस गांवों में एक "पशुचिकित्सालय" भी खोलना चाहिये जिसका संचालन "ग्राम सुधार सभा" के आधीन हो। वहां एक पशुचिकित्सक और देश काल के अनुसार कुछ दवाइयां भी रहनी चाहिये। यद्यपि हमें अभी हमारी इस सलाह को मान लेने की आशा नहीं दिखाई पड़ती तथापि हमें अपनी सम्मति देने में कोई हानि भी नहीं दीख पड़ती। कहने का तात्पर्य यह है कि पशुचिकित्सा विषय में ग्रामीण भाइयों को बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। अब पुराने ढर्रे की चिकित्सा पद्धति ठीक नहीं मालूम देती।

चारे के अतिरिक्त पशुओं के लिये दूसरे खाद्य की बहुत जरूरत है। केवल तृण पर रहने वाले पशुओं की तन्दुरुस्ती ठीक नहीं रहती। पशुओं के खाने की चीजों का परिमाण और समय अवश्य रखना चाहिये, नहीं तो पशु का स्वास्थ्य बिगड़ जाने की सम्भावना है। चारे के अतिरिक्त दूसरे खाद्य जैसे गिनी घास, सादा घास, लूसर्न घास इत्यादि भी पशुओं को देते रहना चाहिये। इन घासों की खेती की जाती है। प्रत्येक किसान को अपने खेतों में थोड़ी बहुत ये घास बो रखनी चाहिये और सेर दो सेर रोज अपने पशुओं को

× यह पुस्तक आलीजाह दरबार प्रेस लश्कर से दस आने में प्राप्त हो सकती है।

खिलानी चाहिये। यदि कृषक-वर्ग इस प्रकार की घास बाजारों और मंडियों में बेचने के लिये तैयार करें तो बहुत लाभ हो सकता है। इन घासों की खेती करने की तरकीब होती है, हम तरकीब भी लिखते, किन्तु स्थानाभाव के कारण क्षम्य हैं।

इंग्लैंड आदि देशों में लोग बारहों महीने ताजा घास अपने अपने ढोरों को खिलाते हैं। वहां साइलो (Silo) बनाकर उसमें कच्ची घास रखी जाती है। उस घास को साइलेज (Silage) कहते हैं सर्दी और हवा को रोकने वाली दीवारों के घिराव से साइलो तैयार होता है, उसके बनाने का ढंग ऐसा होता है जिसमें से घास सहज ही निकाली जासके। उसका भीतरी भाग चिकना होता है। साइलो का आकार गोल होता है उसमें हवा प्रवेश हुई कि घास खराब होने लगती है। साइलो लकडी, ईंट और सीमेंट से बनाया जाता है। यह जमीन के अन्दर भी और जमीन के ऊपर भी बनाया जाता है। भारतवर्ष में कुए की तरह का जमीन में "साइलो" बनाया जाय तो अच्छा हो। अंदर की दीवार पर सीमेंट का पलस्तर करा देना चाहिये। गहरा १६ फीट और व्यास १० फीट से कम किसी तरह नहीं होना चाहिये। पानी की तह से ऊपर ही साइलो की गहराई रहनी चाहिये। इसमें कच्ची हरी घास भर देनी चाहिये। जब घास कुछ-कुछ पक चले उसे साइलो में भर देना चाहिये। ज्वार, मकई, बाजरा आदि के हरे पौधे भी साइलो में रखे जा सकते हैं। साइलेज को पशु बड़े ही चाव से

खाता है। इसमें से घास निकालने के लिये एक गोल दो फीट का द्वार रखना चाहिये। घास या अनाज का पौधा साइलो में कटने के बाद तुरन्त ही रखा देना चाहिये। सायलों में पैरों से खूब दाब-दाबकर घास भर देनी चाहिये। ऊपर से नमक का पानी छिड़ककर मिट्टी से दबा देना चाहिये। इसके बाद टीन या छप्पर से ढाक देना चाहिये। यह खाद्य बारह महीने हरा मिलता है, सुस्वादु होता है, पाचक होता है, पशुओं के लिये पौष्टिक होता है।

ऊख, गोभी के पत्ते, गाजर, शलजम, मूली, अरण्डककड़ी के पत्ते, पलास सेमल का फूल, आलू का पत्ता आदि भी पशुओं को थोड़ा खिलाया जा सकता है। अन्न का भूसा भी पशुओं को खिलाया जासकता है। राजपूताना, पंजाब और यू. पी. के कुछ हिस्सों में गेहूं जौ, चने, उड़द, मूंग आदि का भूसा, बेरी के पत्ते वगैरह ढोरों को खिलाये जाते हैं। वहां घास बहुत कम होती है। इस खुराक से ढोर पुष्ट और बलवान भी रहते हैं। नीचे लिखा मसाला तैयार करके यदि ढोरों को खिलाया जाय तो अच्छा हो:—

तिल की खली १० सेर, चने का दाना ५ सेर, हल्दी ५ छटांक, सौंठ ३ तोला, मेथी के बीज २ छटांक, क्रीम ऑफ टारटर २ छटांक, गन्धक २ छटांक, नमक २ छटांक, धनिया ७ तोला।

इसे बनाकर रखलो। यह पशुओं के लिये बड़ी अच्छी खुराक है। इसे बारिश में १॥ सेर या २ सेर रोजमर्रह दे सकते हैं। बिनौला या बिनौले की खली दुधारु पशुओं को देने से घी बढ़ जाता है। बिनौला अगर साबुत दिया जायगा तो वह खली से दस गुना अधिक बलदायक होगा। खली ज्यादा देने से मक्खन नरम पड़ जाता है, इसलिये खली के साथ बिनौले अवश्य देने चाहिये। अरहर की चूनी से पशु मोटा होता है। गेहूं और जौ की भूसी दूध बढ़ाती है, परन्तु पशु मोटा नहीं होता। दुधारू पशुओं को मोटा बनाने वाला खाद्य नहीं देना चाहिये। गेहूं का चोकर पशु को मोटा भी करता है और दूध भी बढ़ाता है। चने के दाने से पशु मोटा तो होजाता है किन्तु दूध कम देने लगता है। बिनौले और चने का दाना, अरहर की चूरी, ग्वार के बीज बैलों के लिये अच्छी वस्तु है।

पशुओं का दूध बढ़ाना चाहिये, क्योंकि जब दूध की आमदनी बढ़ जायगी तो लोग अवश्य ही पशु पालन करने लग जावेंगे। दूध की कमी से भी हजारों पशु कसाइयों के हाथ बेच दिये जाते हैं। इसमें उन बिचारे मूक निरीह पशुओं का कुछ भी दोष नहीं है, बल्कि हम लोगों का ही दोष है। इसलिये हमें अपने दुधारू मादा पशुओं की रक्षा के लिये सब से प्रथम दूध बढ़ाना आवश्यक है। आज यूरोप में विज्ञान ने ऐसे-ऐसे काम कर दिखाये हैं कि जिन्हें सुनकर या देखकर

आश्चर्यचकित होना पड़ता है। वहां लोगों ने अपने दुधारू पशुओं का दूध भी खूब बढ़ा लिया है। वहां की एक-एक गाय ३०-४० सेर तक नित्य दूध देती है!! यदि हम लोग भी इस प्रयत्न में लग जावेंगे तो आज नहीं कुछ वर्षों बाद यहां भी वैसी ही दुधारू गायें मिल सकेंगी। पशु-पालन के लिये पशु दुग्ध अच्छा और अच्छे परिमाण में होना आवश्यक है। हम यहां दूध बढ़ाने के कुछ उपाय लिखते हैं। आशा है हमारे देहाती भाई इन्हें काम में लावेंगे:—

१. प्रति दिन पेट भरकर हरी घास खिलाई जाय।

२. गऊ को प्रसव के एक महीने पहिले कच्ची घास खूब चराई जाय। घास की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जाय।

३. ब्याने के तीसरे दिन उड़द का दलिया आध सेर, चावल आधसेर, नमक १ छटांक, पीपल का चूर्ण १ छटांक और हल्दी आधी छटांक, इन सब को पानी में मिलाकर उबालना चाहिये। बाद में पावभर गुड़ मिलाकर, कुछ-कुछ गरम गऊ को सायंकाल के समय खिलाओ।

४. पका केला और पानी में घोला हुआ भात दुधारू पशु को देना चाहिये।

५. ऊख की गंडेरी या ऊख का रस निकलने पर बचा हुआ छूछन खिलाया जाय।

६. तीसी की खली और उबला हुआ मटर दिया जाय।

७. उबली हुई बांस की पत्तियां आधी छटांक थोड़ीसी अजवाइन और गुड़ मिलाकर खिलाने से गाय का दूध बढ़ेगा।

८. दाल के धोवन में इमली मिलाकर देने से भी दूध बढ़ता है।

९. गुड़ और कांजा मिलाकर खिलाने से भी दूध बढ़ेगा।

१०. नाइट्रेट ऑफ पोटाशियम १ छटांक, फिटकिरी १ छटांक, खड़िया मिट्टी १ छटांक, जीरा १० छटांक, सफेद चन्दन २ छटांक, नमक १० छटांक, सौंफ १० छटांक, लवंग ५ छटांक।

इन सब को कूट कर रखलो। पशु के आहार में रोज सायं प्रातः एक-एक मुट्ठी डाल दिया करो। दूध बढ़ जावेगा।

११. एक दम दूध कम हो जाय तो अरंड ककड़ी (पपीता) की पत्तियां और उसका कच्चा फल एक साथ पीसकर गुड़ और मैदा के साथ खिलादो।

१२. पका बेल या कच्चा बेल उबालकर खिलाने से भी गायों का दूध बढ़ जाता है।

१३. पशु को उसका दूध दुहकर पिला देने से भी दूध बढ़ जाता है।

१४. घी, मैदा और गुड़ मिलाकर खिलाने से खूब दूध बढ़ता है।

१५. शराब का गाद एक दिन खिलाया कि दूसरे दिन दूध बढ़ा!

१६. सन का फूल, महुआ का फूल, घास, गुड़ पानी में उबालकर खिलाने से दूध बढ़ जाता है।

१७. आम, कटहर, और शरीफा (सीताफल) के वृक्ष की छाल उबालकर पिलानी चाहिये।

१८. गुरुच की पत्ती और उसकी बेल काटकर खिलाई जाय तो दूध बढ़ेगा।

१९. डेढ़ सेर गुड़ और ४॥ सेर बार्ली (जौ) एकत्र उबालकर खिलाने ने से बहुत दिन तक डोर दूध देता है। (डा० टाम्सन) ऊपर लिखी चीजों में से कोई सी अपने दुधारू पशुओं को कुछ दिन खिलाकर उनके दूध को बढ़ा लेना चाहिये। प्रयत्न करने से सब कुछ हो सकता है। यह स्मरण रखना चाहिये।

पशु-पालन के लिये आजकल "डेरीफार्म" की पद्धति भी अच्छी है, इसलिए यहां थोड़ासा इस पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है।

डेयरी (Dairy) उस जगह को कहा जाता है जहां दूध, घी वगैरह उत्पन्न किया जाता है। यह अंग्रेजी का शब्द है। यह पद्धति किसी समय भारत में बड़े जोरों पर थी; किन्तु काल के चक्कर में पड़कर आज उसका नामोनिशान भी नहीं रहा। डेयरी पद्धति दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में अच्छी सफल हो सकती है। क्योंकि यहां मजदूर और दुधारू पशु सस्ते हैं। इसके अलावा विदेशों की गाय भैंसों से हिन्दुस्तान

की गाय भैसों का दूध उत्तम होता है और यहां घी दूध का दाम अन्य देशों की अपेक्षा अधिक मिलता है। जरा एक नक्शा देखिये:—

	भारत में.	इंग्लैंड में.	अमेरिका में.
दूध.	=) से ।) सेर.	~)॥ से =)॥ सेर.	~)। से =) सेर.
मक्खन.	२) से २॥) सेर.	१॥, से १।॥) सेर.	।॥) से १।) सेर.

यहां १२ से २४ सेर तक दूध में १ सेर मक्खन बैठता है परन्तु अन्य देशों में २५ से ४० सेर तक दूध में एक सेर मक्खन निकलता है। सारांश यह है कि यहां यदि डेयरी फार्मिंग (Dairy Farming) के ढंग पर पशु-रक्षण किया जाय तो दोनों मतलब हल हो सकते हैं।

डेयरी के ढंग पर पशु-पालन धनी जमींदार ही कर सकते हैं। इसमें खर्चा होता है, किन्तु लाभ भी आशातीत होता है। 'डेयरी फार्म' ऐसी जगह पर होना चाहिये जहां से कोई शहर या कस्बा निकट हो अथवा रेल्वे स्टेशन पास हो। क्योंकि दूध, घी वगैरह शहर के बाजार में खपाना पड़ता है, सुबह सूर्योदय के समय और संध्या के वक्त चिराग-बत्ती के वक्त दूध वगैरह बिक्री के लिये नगरों में पहुंच जाना चाहिये। डेयरी के आसपास का स्थान ऊंचा और सूखा होना चाहिये। पास ही पशुओं के चरने का बड़ा भारी और अच्छा जंगल होना चाहिये, जिसमें दूध देने वाले पशु स्वतंत्रता पूर्वक चर सकें। एक गौ के लिये कम से कम ७ बीघा जमीन होना जरूरी है।

चरने को तो २ बीघा ही बस है, परन्तु ५ बीघे गो खाद्य की खेती के लिये होनी चाहिये।

डेयरी में अच्छे पशु रखने चाहियें, वर्ना काम बन्द होजायेगा। जिस गौ का दूध रोज ५ सेर से कम हो उसे डेयरी में रखने से लाभ नहीं होता। हमेशा ऐसी गायें रखनी चाहियें जो अधिक और अधिक समय तक दूध देती हों। डेयरी के लिये हिसार जिले की गायें बहुत ही अच्छी साबित हुई हैं। दोगली गायें प्रायः अच्छा दूध देती हैं। जब गाय दूध नहीं देती तब उसे रखना और जब बच्चा दे तब दूध प्राप्त करना, डेयरी की सफलता इसी में है। डेयरी में अच्छे हिसारी अथवा नीलोरी सांड रखने चाहिये। २५ गाय से डेयरी का कार्य शुरू करने में कम से कम ८।१० हजार रुपयों की जरूरत पड़ेगी। और १०० गायों के लिये पचास हजार रुपयों की पूंजी आवश्यक है। इस द्रव्य से गायें खरीदना, सांड मोल लेना, जमीन खरीदना, नौकर रखना, गौशाला बनवाना, नौकरों को रहने के मकान बनवाना, गौ खाद्य की खेती कराना, दाने का इन्तजाम करना और दूसरे जरूरी सामान खरीदना होगा।

डेयरी फार्म अनुभव हीन हाथों में पड़कर प्रायः फेल हो जाया करता है। इसलिये डेयरी का काम सीखने के लिये किसी डेयरी में जाकर सीखना चाहिये। यदि डेन्मार्क, इंग्लैंड, अमेरिका या स्विटजरलैंड में जाकर सीखा जाय तो और भी

अच्छी बात हो। डेयरी का काम दूसरों के (नौकरों के) भरोसे छोड़ने से प्रायः असफलता मिलती है। इसमें तो खुद अपने हाथों काम करने की जरूरत है।

डेयरी में भैंसें नहीं रखनी चाहिये। कई डेयरीज में लोग भैंसें भी रखते हैं। परन्तु इनका पालना कठिन है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भैंस गौ की अपेक्षा दूध बहुत ज्यादा देती है किन्तु उसका खर्चा भी गौ के खर्च से तिगुना चौगुना पड़ता है। साथ ही भैंस गौ से अधिक नाजुक होने के कारण शीघ्र ही रोगग्रस्त होकर मर जाया करती है। भैंस का बच्चा तो जीवित रखना बहुत ही कठिन काम है। फी सैकड़ा ३० भैंसों के बच्चे मर जाया करते हैं। भैंस का दूध गरम स्वभाव का होता है। जबतक उसमें पानी नहीं मिला लिया जाता, वह शीघ्र ही पचता भी नहीं है। इत्यादि कई कारणों से भैंसें डेयरी में पालने से कुछ भी लाभ नहीं होता।

डेयरी खोलने वाले सज्जन को पहिले इस विषय को अच्छी तरह अध्ययन कर लेना चाहिये, नहीं तो सिवाय हानि के और कुछ नहीं होगा। हमें बहुत कम आशा है कि हमारे देहाती भाई डेयरी फार्म के ढंग पर पशुपालन पसन्द करें, किन्तु उस पद्धति से परिचय करा देना हम अपना कर्तव्य समझते थे, इसलिये बहुत ही थोड़े में यहां "डेयरी फार्म" का हमने जिक्र किया है। इस विषय पर यदि कोई

इस विषय का ज्ञाता एक पुस्तक लिखने बैठे तो सैकड़ों पृष्ठों का एक ग्रंथ तैयार हो सकता है।

देहाती लोग अत्यंत निर्धन हैं। इसमें धन और विद्याबल की जरूरत है। इनमें से एक की भी कमी हुई कि डेयरी का चलना कठिन है। अभी हमारे देहातों में ये दोनों बातें एक ही जगह कैसे मिल सकती हैं जब कि यहां बड़े-बड़े नगरों में भी विद्या और धन एक जगह नहीं दिखाई पड़ते। अस्तु—गांववाले एक कम्पनी स्थापित करके और उसके शेयर (हिस्से) आसपास के गावों में बेचकर डेयरी चला सकते हैं। यह काम ग्राम्य-सभा के अधिकार में देदिया जाय। या "को-आपरे-टिव सोसाइटी" की मदद से यह काम हो सकता है।

आशा है हमारे ग्रामीण-भाई पशु-पालन की तरफ अब शीघ्र ही अपना ध्यान देंगे, जिससे गांवों में पूर्वसा वैभव और आनन्द फिर दिखाई पड़े।

खाद।

देहातों में कृषि-कार्य मुख्य है और कृषि को उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचाने के लिये जिन-जिन पदार्थों की आवश्यकता है उनमें से एक खाद भी है। खाद खेती का खाद्य है। जिस प्रकार बिना खाद्य के प्राणी का जीवित रहना असम्भव है, उसी तरह बिना खाद के पौधों का जिन्दा रहना कठिन है। उत्तम खाद्य से प्राणी का शरीर सबल, पुष्ट, नीरोग

और दीर्घायु बनता है, उसी तरह अच्छे खाद्य से पौधे भी पुष्ट, दृढ़, नीरोग, और अच्छी पैदावार देने वाले बनते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि भारत के किसान इस विषय पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। यद्यपि भारतीय किसान यह बात भली-भांति जानता है कि गाय और बैलों को घास नहीं देने से वे काम लायक नहीं रहेंगे, तथापि वह यह नहीं सोचता कि पौधों को खाद न देने से क्या परिणाम होगा? बैलों को खिला-पिलाकर हल और चरस (मोट) खींचने के लिये चाहे-जितना मोटा-ताजा बनाये रखिये किन्तु यदि जमीन में खाद नहीं तो बैलों की मोटाई से ही अन्न-फसल अच्छी नहीं आ-जावेगी। जिस प्रकार अच्छे बैलों की खेती में जरूरत है उसी तरह उत्तम जमीन भी होनी चाहिये। जमीन की उपज खाद पर अवलम्बित है। जब तक जमीन में पौधों के पोषक-तत्व होते हैं, तभी तक वह अच्छी उपज देती है, और जब उसमें के वे तत्व पौधों के वृद्धि-विकास में खर्च होजाते हैं तब उपज घट जाती है। जब भूमि की विशेषता कम होजावे तब समझना चाहिये कि जमीन बीमारी की अवस्था में है या निर्बल है। ऐसी दशा में बिना बीमारी हटाये काम लेना ठीक नहीं। उसे आराम और अच्छी खुराक देना चाहिये। जब भूमि से लगातार हर साल काम लिया जाता है तो वह कमजोर होजाती है हमारे भोले किसान लोग ऐसी दशा में कहा करते हैं कि "अरे भाई! कलियुग का जमाना है,

धरती माता ने भी सत छोड़ दिया। शास्त्रों में जो कुछ लिखा है, क्या वह हुए बिना थोड़े ही रहेगा ? भागवतजी में भी लिखा है कि भूमि वृक्ष, वनस्पति, अन्न वगैरा पैदा करना छोड़ देंगी" इत्यादि। इन लोगों से पूछा जाय कि क्या हिन्दुस्तान में तुम्हारे लिए ही कलियुग आया है ? पृथ्वी पर के और देशों में तो यह हालत नहीं है। वे लोग अपने उद्योग और श्रम से पृथ्वी की उपज बढ़ा रहे हैं। जितनी जमीन में पहिले एक मन उत्पन्न होता था उसी में आज १० मन पैदा होता है। वहां के किसान बड़े ही मौज और आनन्द में जीवन गुजार रहे हैं। थोड़ी-थोड़ी-सी जमीनों पर लखपती और करोड़पति बने हुए हैं। यहां बहुतसी जमीन के मालिक होकर भी आधे पेट रहते हैं।

दर असल बात यह है कि अज्ञानता से कहो या दरिद्रता से—यहां का कृषक-समाज लगातार खेती करके जमीन की उपजाऊ शक्ति को नष्ट कर देता है। एक फसल काटकर कुछ दिनों बाद ही उसमें दूसरी फसल बो दी जाती है। परिणाम यह होता है कि जमीन में फसल को खुराक पहुँचाने की ताकत नहीं रहती। इसके लिए यही एक सुगम उपाय है कि या तो जमीन को आराम दिया जाय ताकि धूप, हवा और प्रकाश अपना प्रभाव डालकर उसकी ताकत बढ़ावें, या जो तत्त्व उसमें कम होगये हैं, वे उसमें पहुँचाये जायँ।

हमारे देश के किसान जिस पद्धति से खेती करते हैं, उनसे मालूम होता है कि वे खेती की उपजाऊ शक्ति को स्थिर नहीं रख सकते। उनके बेतरतीब ढंगों से उपज में कमी आजाती है। कुछ कारण ये भी हैं:—

१. जोर की बारिश होने के कारण खेतों की मिट्टी की ऊपरी तह बह जाती है।

२. मिट्टी में वानस्पतिक अंशों की कमी आजाती है।

३. एक ही तरह की फसल हमेशा एक ही जमीन में बोने से उपजशक्ति कम हो जाती है।

४. फलीदार फसलों (leguminous crops) की काफी संख्या, तरतीब से दूसरी फसलों के साथ न बोना, जिससे कि मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा काफी बनी रहे।

५. पौधों के भोजन के अंशों के कम होजाने पर उसे पूरा करने अर्थात् भूमि के खुराक पर ध्यान न देना।

इनमें के कुछ विषयों पर संक्षेप में लिखना जरूरी समझकर, पहिले उक्त विषयों पर थोड़ा विचार करके फिर आगे बढ़ना ठीक होगा।

(१) मूसलाधार वर्षा द्वारा ऊपर की सतह की मिट्टी बह जाने से रोकनी चाहिये। पहाड़ी और ढालू जमीन में अक्सर अधिक वर्षा के कारण जमीन की ऊपरी तह बह जाया करती है जमीन की ऊपरी तह पर कुछ इंच मिट्टी बहुत ही उपजाऊ होती है; इसलिये उसका बहकर चला जाना खेती

के लिये अत्यन्त हानिप्रद है। इसकी रोक के लिये ऐसे उपाय काम में लाने चाहिये कि जिनके सहारे जमीन में पानी बहुत सोखा जासके। हल गहरा चलाने से जमीन खूब पानी सोखेगी और ऊपरी तह का रासायनिक द्रव्य पौधे की जड़ तक पहुंचकर पौधे को अधिक लाभ पहुंचावेगा। मिट्टी में वानस्पतिक-पदार्थ मिलाने चाहिये। ढालू जमीन पर इस तरह खेती करनी चाहिये कि ९० डिग्री का कोण (Right angle) बन जाय। इन उपायों से जमीन का उपजाऊ अंश वर्षा में नहीं बहने पाता। बहुत ही ढलवां जमीन हो तो घास की खेती करनी चाहिये। घास जमीन की तह को सुरक्षित रखती है। उसकी जड़ें ऐसी होती हैं कि उनमें से मिट्टी बहकर निकल जाना असम्भव है। ढालू जमीन में जो हल चलाया जाय वह ढलाव के विरुद्ध हो न कि ऊपर से नीचे की ओर। वर्षा के बाद जोती हुई जमीन में पानी अधिक ठहरा रहता है। इस तरह जमीन पर की ऊपरी तह बहने से बचाई जा सकती है।

(२) जोती हुई जमीन में वानस्पतिक पदार्थ बहुत जल्दी सड़ते हैं। यह एक जरूरी बात है कि जमीन में वानस्पतिक-पदार्थ जरूर हों; क्योंकि वे भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा बनाये रहते हैं। वानस्पतिक-पदार्थों से जमीन में सील बनी रहती है और भूमि की बनावट भी नहीं बिगड़ने पाती। जिस जमीन में वानस्पतिक अंश नहीं होता, उसमें

पानी अन्दर न प्रवेश करके ऊपर ही रहता है, और पानी सूख जाने पर ऊपर की सतह पर पपड़ी पड़ जाती है। अगर सीली दशा में खेती कीजाय तो जमीन धूप पाकर तपने लगती है और यदि सूखी दशा में की जाय तो बड़े-बड़े ढेले बन जाते हैं। वानस्पतिक-पदार्थों का जमीन में रहना बहुत ही जरूरी है। अगर हमारे देश की ऊसर जमीनों में वानस्पतिक-पदार्थ यथेष्ट डाल दिये जावें तो पैदावार बहुत ही अच्छी हो सकती है। जमीन की उपज-शक्ति बनाये रखने के लिये एक मात्र वानस्पतिक-पदार्थों का होना जरूरी बात है।

(३) फसलों को हेरफेर कर बोना चाहिये। अनुभवी कृषि-शास्त्रियों का कहना है कि लगातार एक ही चीज, एक ही भूमि में बोते रहने से उपज घट जाती है। जमीन की उपज कायम रखने के लिये कभी एक-दो फसलों के बाद फलीदार फसल बो देना चाहिये। यदि गेहूं के बाद ज्वार, मक्का की खेती उस जमीन में की जाय तो वह भी कुछ न कुछ लाभदायक होगी, परन्तु गेहूं ही गेहूं की खेती करते जाना हानिकारक है। यह नक्शा देखियेः—

लगातार १७ साल।

खेती मक्का लगातार १७ साल में उपज—११ मन ८ सेर पैदावार फी एकड़।

खेती मक्का, गेहूं, शफताल १७ साल में उपज—५० मन २० सेर पैदावार फी एकड़।

खेती मक्का, जयी, गेहूं, शफताल १७ साल में उपज–५४ मन २ सेर पैदावार फी एकड़।

खेती मक्का, गेहूं, शफताल १७ साल में उपज–७७ मन ८ सेर पैदावार फी एकड़।

इसमें शफताल की खाद दीगई थीं, जिसमें पैदावार खूब बढ़ी एक दूसरा नक्शा देखिये:—

आठ वर्ष का अनुभव

खेती मक्का लगातार ८ वर्ष में उपज–१७ मन २० सेर फी एकड़।

खेती मक्का, सेम, गेहूं ८ वर्ष में उपज–२२ मन १० सेर फी एकड़।

खेती मक्का, गेहूं, रिजका (ल्सर्न) ८ वर्ष में उपज—३३ मन ३२ सेर फी एकड़।

इसमें गेहूं के बाद सेम का खाद और रिजका (Lucern) का खाद दिया गया था। इस तरह उलट-फेर से फसल बोने का एक लाभ और भी होता है कि कीड़ा-मकोड़ा या किसी तरह का रोग फसल को नहीं खराब करता। खास करके फलीदार फसलों को बोने से जमीन का वानस्पतिक द्रव्य नहीं घटता। फलीदार फसलों के बोने से जमीन में नाइट्रोजन की अधिकता होजाती है। किसानों को चाहिये कि तीसरे-चौथे साल अपने खेतों में अवश्य किसी फलीदार फसल की खेती

किया करें। यदि हेरफेर करके भारतीय कृषक जमीन में फसल बोया करें तो पैदावार अच्छी हुआ करेगी।

वानस्पतिक द्रव्यों के अभाव की पूर्ति के लिये खेतों में खाद देना अत्यन्त आवश्यक है। हम खाद की वर्तमान पद्धति पर लिखने के पहिले कुछ प्राचीन बातों पर भी विचार करेंगे। वेद ने खेती-बारी पर बहुत कुछ कहा है खेत जोतने के लिये वेद में लिखा है कि—"हल चलाने वाले मनुष्य और बैल को यदि प्राङ्मुख छोड़ दिया जाय तो वे रुद्र के चंगुल में फंस जावेंगे। दक्षिण की ओर मुंह करके छोड़ दिये जांय तो पितरों के हाथ चले जावेंगे और पश्चिम मुख छोड़ दिये गये तो राक्षस उनका अंत कर डालेंगे, अतएव उत्तर की ओर ही उनका मुंह करके हल छोड़ना चाहिये। क्योंकि उत्तर दिशा देव और मनुष्यों को सुख देनेवाली है"। जमीन की उर्वराशक्ति को स्थिर रखने के लिये निम्न प्रमाणों पर ध्यान देने की जरूरत है:—

"इयंवा अग्नेरति दाहादविभेत्सैतद् द्विगुणमपष्यतत्कृष्टं चाकृष्टंच ततोवा इमांनात्यदह घुत्कृष्टं चाकृष्टंच भवत्यस्या अनतिदाहाय"।

"अतिदाहक नाम से पृथ्वी डरी, इससे बचने के लिये यह ठीक जंचा कि कहीं जमीन जोती जाय और कहीं न जोती जाय।" अभी तक प्रयोगों से यह सिद्ध नहीं हुआ है कि उक्त सिद्धांत कहां तक ठीक है।

"घृतेनसीता, मधुनासमक्ता, विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वतीपयसा पिन्वमानाऽस्मां, सीते ! पयसाऽभ्यावव्रृत्स्व।

इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि जमीन पर दूध, घी और शहद छिड़कने से भूमि की पैदावार बढ़ जाती है। आजकल भी नाग-बेल के पान की खेती करने वाले घी, तेल, शहद आदि खाद की जगह काम में लाते हैं। वाराह संहिता में कहा है:—

मृद्वीभूः सर्ववृक्षाणां हितातस्यां तिलान्वयेत्।
पुष्पितांस्तांश्च गृह्णीयात्कर्मैतत्प्रथमं भुवि॥

सब प्रकार के पौदों के लिये मृदुभूमि लाभदायक होती है। इसलिये भूमिं को कोमल बनाने के वास्ते उसमें तिल बोया जाय और जब फसल फूलने लगे तब हल चलाकर मिट्टी में मिलादी जाय। इस प्रकार हरी खाद मिलने से खेत मृदु (Mallow) होजाता है।

" घृतोशीर तिलक्षैद्र विडंगक्षीर गोमयैः।
आमूलस्कंध लिप्तनाम् संक्रामण पिरोयणम्॥"

(वाराह संहिता)

घी, तिल, वायविडंग, दूध और गोबर इन सब को मिलाकर पौधे को जड़ से तने तक लेप करे और उसे दूसरी जगह लगादे। ऐसा करने से पौधा मरता नहीं जल्दी ही जड़ पकड़ लेता है। और देखिये—

" शीत वाता तपे रोगो जायते पाण्डु पत्रता ।
अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखा शोषो रसस्रतिः ॥
चिकित्सत मयैतेषां शस्त्रेणादो विशोधनम् ।
विडंग घृत पंकाक्तान्सिचयेत्क्षीर वारिणा ॥ "

ठंड, हवा और धूप से वृक्षों के पत्ते पीले पड़ जाते हैं; और अंकुर की बाढ़ रुक जाती है। शाखायें सूख जाती हैं और रस लगता है। इसलिये वृक्षों की चिकित्सा होनी चाहिये। शस्त्र द्वारा रोग ग्रस्त भाग को काटकर वहां वायविडंग और घी लगाना चाहिये और बाद में पानी में दूध मिलाकर उस पर छिड़कना चाहिये।

" फल नाशे कुलत्यैश्च माषैर्मुद्रैस्तिलैर्यवे ।
शृत शीतपयः सेकः फल पुष्पादि वृद्धये ॥ "

"यदि वृक्ष में फल-फूल न लगें तो कुलथी, उड़द, मूंग, तिल और जौ को दूध में डालकर उबालो और इसको वृक्ष पर छिड़कने से फल-फूल की वृद्धि होगी।" पहिले यहां इतना दूध, घी होता था कि खेत में खाद की जगह काम में लाया जाता था। अब तो मानव-शरीर-रूपी खेत को भी यह दूध, घी का खाद दुर्लभ होरहा है। यद्यपि इस युग में ऐसा खाद तैयार करना भारतीय कृषकों के लिये असम्भव है तथापि हम प्राचीन काल में उक्त खाद बनाने की पद्धति को यहां लिखते हैं:—

'हस्तायतं तद्विगुणं खात्वाऽवटे प्रोक्त जलान्न पूर्णम् ।
शुष्क प्रदग्ध मधु सर्पिषातत्प्रलेपयेद्भुत्म समीचेतन ॥
चूर्णी कृतैर्माषतिलयैवैश्च प्रपूरयेन्मृतिक यान्तरस्थैः ।
मत्स्याभिषाम्भः सहितं च हन्याद्यावद्धनत्वं समुपागतन्द् ॥
उत्पंचबीजं चतुरंगुलाधो मत्स्याम्भसा मांस जलैश्चसिक्तम् ।
वल्ली भवत्याशु शुभ्रप्रवाला दिस्मापनी मण्डप मांवृणोति ॥

अर्थ—एक हाथ लम्बे एक हाथ चौड़े और एक हाथ गहरे गड्ढे में दूध मिला हुआ पानी भरा जाय । जल के सूख जाने पर घी और शहद मिलाकर उस गड्ढे की दीवार लीपदी जाय । इसके बाद उड़द, तिल और जौ का चूर्ण मिली हुई मिट्टी इसमें भरदी जाय । यह मिट्टी मछली के मांस में मिश्रित जल से सींची जाय । यह एक खाद तैयार हुआ अब इसमें जो भी बीज बोया जायगा वह उगने के बाद सबको आश्चर्य चकित कर देगा । " इस पर से अच्छी तरह विचार किया जा सकता है कि, पूर्व काल में दूध, घी, शहद, तिल, जौ, उड़द आदि का खाद होता था । मछली का रस और मांस भी खाद के काम आता था ।

हड्डियों का खाद भी प्राचीन काल में उपयुक्त था, इसका प्रमाण लीजिये—

" सदितैतानि शरीराणि पृथिव्यै मातुरुपस्थ आपधे ।
तेभिर्युज्यन्ता माघ्नियाः ॥ "

परमात्मा ने पृथ्वी देवी के पेट में अस्थिरूपी शरीर रख छोड़े हैं। उन हड्डियों को मिट्टी में मिलाने के लिये तुम बैल जोतो--

' सादितैतानि०--तेम्यः पृथिवी शभवः '।

परमात्मा ने पृथ्वी०--हे माता! हड्डी के योग से हमारा कल्याण कर।

इस विवेचन से यह स्पष्ट होजाता है कि प्राचीन काल में भी भारतवासी अच्छे-अच्छे खादों का उययोग करते थे। अब भी किसानों को यह अच्छी तरह मालूम है कि खाद देने से खेती अच्छी आती है। परन्तु खाद बनाने की विधि न आने के कारण, और इस वर्तमान भयानक दरिद्रता से वे ' किंकर्तव्य विमूढ़ ' से बने हुए हैं। अन्य देशों के किसान इस किसानों के देश भारत से बाजी मार लेगये हैं। हम यहां अपने किसान भाइयों के लाभ के लिये वर्तमान ढंग की खाद पद्धति पर थोड़ा बहुत प्रकाश डालेंगे। हमें आशा ही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास है कि ग्रामीण भाई इससे अवश्य लाभ उठावेंगे--

पौधों को अपने भरण-पोषण के लिये इन दस तत्वों की जरूरत रहती है--(१) आक्सीजन, (२) कार्बन, (३) हाइड्रोजन, (४) चूना, (५) मेग्नेशियम, (६) लोहा, (७) गंधक, (८) नाइट्रोजन, (९) पोटेशियम और (१०) फास्फरस। पौधा इन तत्वों को किस प्रकार ग्रहण करता है यह एक अलग

ही विषय है; अतएव इस पर कुछ भी न लिखकर हम इन तत्वों को संक्षेप में यहां समझावेंगे। चतुर किसान को इन में से जो तत्व कम दिखाई दे या जिस फसल के लिये जिस तत्त्व की जरूरत हो उसी तरह खाद देना चाहिये। पौदों में प्रतिशत ९० आक्सीजन, कार्बन और हाइड्रोजन होते हैं। ये तीनों तत्व हवा और पानी में काफी रहते हैं; अतएव इन वस्तुओं की अधिक चिन्ता करना व्यर्थ है। इसी तरह केलोशियम, मेगनेशियम, लोहा और गंधक पौधों को बहुत कम चाहिये ये वस्तुएं सभी जमीनों में मिल जाती हैं; अतएव इनकी चिन्ता भी किसान को नहीं करनी चाहिये। इस तरह सात तत्वों के लिये कृषक को किसी भी तरह की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अब रह गये ३ तत्व—(१) नाइट्रोजन, (२) पोटेशियम और (३) फास्फरस; ये तीनों तत्व पौधों को काफी मिलने चाहिये। ये तत्व अक्सर जमीन में नहीं होते। जिन खेतों में ये होते हैं वहां लगातार कई फसलों के बोने से ये खर्च होजाते हैं; इसलिये इन तत्वों को जमीन में लौटाते रहना चाहिये। इसलिये नाइट्रोजन-शूरन का खार, पोटोशियम सज्जी मिट्टी या जवाखार और फासफरस-हड्डी का तेजाब खेतों में डालते रहने की कृषकों को चिन्ता करने की आवश्यकता है।

नाइट्रोजन—इन तीनों में नाइट्रोजन पौधे के लिये बहुत जरूरी चीज है। यह मनुष्य के मल-मूत्र में, ढोरों के गोबर,

मूत्र में सूखे पत्ते, डण्ठल, ऊन, बाल, मकान और नगर के कचरे-कूड़े में, मछली, चमड़ा, मेंगनी, हड्डी, सींग, खुर, सरसों, घुड़साल की धूल, खली, लकड़ी के कोयले आदि में पाया जाता है। बारिश के मौसम में यह पदार्थ हवा में बनता है और बारिश के साथ बरसता है। बेक्टेरिया (Bacteria) नामक कीटाणु जो जमीन के अन्दर होते हैं, वे भी इसके साधन हैं। इनमें कम ज्यादह पोटाश और फास्फरस का भाग भी रहता है।

पोटेशियम और फास्फरस ये दोनों तत्व ऐसे हैं जो प्रायः जमीनों में मिलते हैं। पत्थर की रेत से बनी हुई जमीन में इनका भाग अधिक पाया जाता है। ये दोनों वस्तुएं तभी काम में आने लायक हो सकती हैं, जब कि ये पानी में घुली हों। प्रत्येक पौधे के लिये एक समान इन वस्तुओं की जरूरत नहीं पड़ती। किसी को कुछ और किसी को कुछ कम ज्यादा जरूरत होती है। यह जांच करलेना सर्वसाधारण के वश की बात नहीं है कि किस जमीन में किस तत्व की कमी है। इस-लिये हम सर्वसाधारण की समझ में आवे वही बात यहां लिखेंगे।

हम यहां खाद को चार विभागों में बांटेंगेः—

१. प्राणि सम्बन्धी खाद (Animal manures)—जैसे मैला, पेशाब, गोबर, हड्डी, मांस, सींग, वगैरा।

२. उद्भिज खाद (Vegetable Manures)—जैसे सन, तिल, पत्ते, डंठल, घास, फूस वगैरा।

३. खनिज खाद (Mineral Manures)—जैसे सज्जी, चूना, शोरा, वगैरा।

४. मिश्रित खाद (Mixed Manures) जो मिश्रित हो, अर्थात् सब प्रकार की चीजों से बनती हो।

इनमें से पाशयिक और उद्भिज खादों का प्रभाव देर में होता है, किन्तु देर तक रहता भी है। इनमें साधारणतया पौधे के योग्य सभी वस्तुएं होती हैं; इस कारण इन्हें सामान्य खाद भी कहते हैं। खनिज खाद का प्रभाव तत्काल होता है; किन्तु स्थायी नहीं होता।

मामूली खादों में गोबर की खाद सब से अच्छी सिद्ध हुई है। पशु जितना भी भोजन करता है, उसका एक बड़ा भाग उसके भरण-पोषण में व्यय हो जाता है और खुराक का कुछ अंश जिसे वह हज्म नहीं कर पाता गोबर और पेशाब के साथ शरीर से बाहर हो जाता है। गाय, बैल, भैंस, बकरी, घोड़े आदि पशुओं को हरी सूखी घास, बिनौले, खली, दाना वगैरह खिलाये जाते हैं। इन्हीं पदार्थों का कुछ अंश विष्ठा और पेशाब के साथ बाहर निकल आता है, इसलिये पशुओं के विष्ठा और पेशाब की खाद अच्छी होती है।

हम यहां एक पाशविक खाद की उपयोगिता सूचक चित्र देते हैं।

खाद की किस्म.	प्रति एकड़	प्रति एकड़ उपज		
	नाइट्रोजन का अंश	१९०४	१९०५	१९०६
गोबर ...	३० पौंड,	१९८५	१८०५	१८८०
रेंडी की खली	३० ,,	१६३५	१५७०.	१८६०
हड्डी ...	३० ,,	१०८५	१५८०	१५६०
हड्डी और शीरा	३० ,,	१६०५	१०९०	१६८०
खाद नहीं दिया	...	१२३०	१५४५	१५६०

७५ मन गोबर में ३० पौण्ड नाइट्रोजन रहता है, और ७॥ मन रेंडी की खली में भी ३० पौण्ड नाइट्रोजन होता है परन्तु इसकी अपेक्षा गोबर अच्छा फल दिखाता है। गोबर का खाद खली की अपेक्षा सस्ता मिलेगा। गोबर के खाद से बढ़कर दूसरा खाद साधारणतया कोई भी अच्छा नहीं है। गोबर में दूसरे अंश जैसे फासफरस और पोटाश भी होते हैं, परन्तु खेद कि भारतवर्ष में गोबर के कण्डे, छाने, ऊपले आदि बनते हैं और करोड़ों मन गोबर जो खाद के काम का होना चाहिये, जला दिया जाता है। गोबर के खाद की अपेक्षा गोबर के कण्डों का मूल्य अच्छा आता है, इसलिये लोगों ने कण्डे बना-बनाकर जलाने का काम आरम्भ कर दिया। आपने देखा होगा कि जरा-जरा से गोबर के लिए लोग आपस में लड़ते-झगड़ते हैं गाली-गलोज करते हैं। ढोरों के खड़े होने

की जगह तथा ढोरों के निकलने के मार्गों पर क्या आपने बहिनों को डलिया लिये दौड़ते-भागते नहीं देखा ? जलाने की लकड़ियां महंगी मिलने के कारण लोगों को इस तरह गोबर के कण्डे बनाकर अपना काम चलाना पड़ा। पशुओं का विष्ठा जलाकर भोजन बनाना असभ्यता में शामिल है। भारत के सिवा किसी भी दूसरे देशों में इस तरह पशुओं का विष्ठा जलाकर, भोजन नहीं पकाया जाता। पहिले यहां हमारे देश में भी कोई पशुओं का विष्ठा नहीं जलाता था। एक अंग्रेज जो बादशाही जमाने में भारत-यात्रा के लिये आया था उसने अपनी यात्रा के वर्णन में लिखा है कि "भारतवासी लकड़ियां जलाकर भोजन बनाते हैं।" इत्यादि। उन दिनों पशु भी अधिक थे और गोबर कोई जलाने के काम में नहीं लाता था। सभी का खाद होता था, इसलिये पैदावार भी अधिक होती थी।

हम यहां अकबर के जमाने की पैदावार का और वर्तमान काल का तुलनात्मक कोष्टक देते हैं। पाठक ध्यान से देखें—

नाम वस्तु.	प्रति एकड पैदावार (अकबर के समय में)	प्रति एकड पैदावार (अंग्रेजी समय में)
चावल	१६ ३/४ मन पक्के.	१० मन पक्के.
गेहूं.	१४ १/४ „ „	८ १/४ „ „
कपास.	६ ४/५ „ „	सिर्फ २६ सेर.

इन सब बातों से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि गोबर का एक अत्यन्त उपयोगी खाद बनता है। इसलिए किसानों को—खास करके हमारे ग्रामीण भाइयों को—गोबर जलाने के काम में कदापि नहीं लाना चाहिये। भोजन आदि बनाने के लिए लकड़ी काम में लानी चाहिये। जलाने की लकड़ियों के लिये जंगल सुरक्षित रखकर गोबर का खाद तैयार करना चाहिये। इससे तीन लाभ होंगे—१. उत्तम खाद मिलेगा, २ घर की हवा गोबर के धुएँ से दूषित न हो सकेगी, और ३. वर्षा खूब हुआ करेगी। जहां वृक्ष, जंगल अधिक होता है वहां वर्षा खूब होती है। जहां पेड़ों की घनी झाड़ियाँ और बन नहीं होता वहां हमेशा पानी के रोने ही रहते हैं। यह विषय विज्ञान से सम्बन्ध रखता है। इसलिए किसानों को लकड़ियाँ जलाना चाहिये और गोबर को खाद के लिए छोड़ देना चाहिये।

✓ गोबर की खाद कई तरह से बनाई जाती है। स्थानाभाव के कारण सब तरकीबों पर यहां विचार नहीं किया जा सकता। 'खाद' विषयक एक स्वतन्त्र पुस्तक अलग लिखी जानी चाहिये। और जहां तक मेरा ख्याल है, हिन्दी में इस विषय पर एक पुस्तक 'खाद' सम्बन्धी है भी। हम यहां गोबर से खाद बनाने की ऐसी विधि लिखेंगे जो सरल और लाभ-प्रद हो।

गोबर की खाद की उपयोगिता, पशु की उम्र, खुराक और उसके श्रम पर निर्भर है। खेतों की जोताई करने और

दूध घी के लिये पाले हुए ढोरों के गोबर की खाद बहुत अच्छी होती है। हाथी, घोड़े और खच्चर आदि की लीद और मूत्र भी खाद के काम में लाई जाती है। परन्तु ये गोबर से अच्छी खाद तैयार नहीं करते। गोबर में एक विशेषता यह है कि उसकी प्रकृति ठंडी होने के कारण वह गर्मी से जल्दी नहीं सूखता। लीद वगैरा में पानी का अंश कम होने के कारण वह जल्दी सूख जाती है। इसलिये लीद की खाद, कीमती विदेशी पौदों के लिये काम में लाई जाती है। बूढ़े पशुओं का गोबर और लीद खाद के लिये जितना अच्छा होता है, उतना जवान पशुओं का मल-मूत्र नहीं होता। इसका यह कारण है कि बूढ़े पशु अपनी खुराक को अच्छी तरह नहीं पचा सकते और उनकी खुराक का बहुतसा बिना पचा हुआ भाग मल-मूत्र के द्वारा निकल जाया करता है। खुराक का फास्फोरस नामक अंश हड्डियों की वृद्धि और मजबूती में खर्च हो जाता है और नाइट्रोजन मांस रक्त आदि के बनने में व्यय हो जाता है; इसलिये कम उम्र के पशुओं के मल-मूत्र की खाद उतनी बढ़िया नहीं होती। ग्याभिन और दुधारू पशु का मल-मूत्र भी खाद के लिये निर्बल होता है। घास, भूसा, कड़बी आदि चरनेवाले पशुओं का मल मूत्र खाद के लिये कम उपयोगी होता है। किन्तु जो पशु दाना, खली, बिनौला, लूसर्न आदि पदार्थ खाते हैं उनके गोबर-मूत्र की खाद अच्छे किस्म की मानी गई है।

जिसके घर एक जोड़ी बैल हो उसे दस फीट लम्बा, सात फीट चौड़ा और पांच फीट गहरा एक गड्ढा बनाकर उसमें खाद तय्यार करना चाहिये। इस गड्ढे की पेंदी में कंकर वगैरा डालकर कूट पीटकर पक्की करदेनी चाहिये। दीवारों को मिट्टी से लीप देना चाहिये और ऊपर एक छप्पर डाल देना चाहिये, ताकि खाद में के उपयोगी तत्व सूरज की गर्मी से भाप बनकर उड़ने न पावें। जब गड्ढे में २ फीट के करीब गोबर हो जावे तब उसपर मिट्टी या भट्टियों की राख की एक तह डालदी जाय। इस गड्ढे में जो कुछ भी कचरा कूड़ा हो, जैसे साग, भाजी, छिलके, हरी घास, जूठन का पानी, पेशाब, हड्डी, मांस, चमड़ा—डाल देना चाहिये। अगर गोबर सूख गया हो तो उसपर गटर का मैला पानी, पेशाब वगैरा डालकर तर कर देना चाहिये। उसमें जहां-तहां डण्डे से छेद करके मैला पानी अथवा नमक का पानी डालना चाहिये। जब दो फीट गोबर कचरे की थर हो जावे तो फिर उस पर सूखी मिट्टी या राख डालना चाहिये। इस तरह करते-करते जब गड्ढा भर जाय और २-२ फीट ऊपर तक आजाय तब उस गड्ढे में गोबर कचरा डालना बंद कर देना चाहिये और दूसरे गड्ढे में डालना शुरू कर देना चाहिये। खाद के गड्ढे के चारों ओर तीन फीट ऊंची दीवार बनवा देनी चाहिये; ताकि उसमें बारिश का पानी न समासके।

चाहिये। यदि सरकार इस ओर ध्यान दें तो यह काम सहज ही में अच्छी तरह हो सकता है और अन्न की पैदावार बढ़ाई जा सकती है।

पशुमूत्र की खाद बनाई जाती है। खाद के गड्ढे में यदि पशुमूत्र डाला जाय तो ठीक है नहीं तो पशुशाला ही में निम्न तरीके से खाद तैयार कर लेना चाहियेः—

पशुशाला का फर्श पत्थर, ईंट या चूने का हो। यदि यह सम्भव न हो तो फर्श पर कंकरीली मिट्टी कूटकर उसे खूब कड़ी जमादो। जमीन का कड़ा होना इसलिए जरूरी है कि पशुओं का पेशाब पृथ्वी न सोखने पावे। पशु के पीछे की ओर की जमीन ढाल रखनी चाहिये और एक नाली बना कर एक नांद में सब मूत्र इकट्ठा करके खाद वाले गड्ढे में डालते रहना चाहिये, यदि यह सुविधा-जनक न हो तो पशु-शाला के फर्श को ठोस बना लेने के बाद उस पर भूसा, मूंग-फली के छिलके, राख या मिट्टी बिछा देना चाहिये, ये चीजें पशु के पेशाब को चूस लेंगे। गोबर को उठाते रहना चाहिये। दूसरे रोज भूसा, राख वगैरा की एक तह और डाल देना चाहिये। इस तरह रोज करते रहना चाहिये। थान के उस भूसे, राख या मिट्टी को अच्छी तरह उलट-पलट करते रहना चाहिये। जब २।, २॥ बालिश्त तह हो जावे तो यह खाद वहां से उठाकर खेतों में पहुँचा देना चाहिये। बाड़ों में ऐसी खाद तैयार नहीं हो सकती, क्योंकि वे खुले होते हैं, धूप और

हवा से पेशाब के उपयोगी तत्व उड़ जाते हैं। जो पशु मकानों में बँधते हैं उनके पेशाब की ही खाद इस तरह तैयार की जा सकती है। पशुशाला में बनी हुई खाद बहुत ही अच्छी खाद समझी जाती है।

सड़े हुए खाद को काम में लाना चाहिये। ताजे गोबर को खाद की जगह काम में लाने की भूल कभी नहीं करना चाहिये। ताजे गोबर से पौधों में दीमक लगजाती है। कपास, ज्वार आदि खरीफ की फसलों में फी एकड़ दस गाड़ी से बीस गाड़ी तक गोबर-मूत्र की खाद दी जा सकती है। यह खाद फसल बोने के दो महीने पहिले खेत में फैला देनी चाहिये। आबपाशी की फसलों के लिये फी एकड़ ५० गाड़ी तक खाद होना चाहिये। गन्ने की फसल के लिये १०० गाड़ी फी एकड़ खाद की जरूरत है। रबी की फसल के लिये गर्मी के मौसम में—चैत्र, वैशाख में खाद डाली जानी चाहिये। अक्सर देखा गया है कि लोग खाद की ढेरियां खेतों में लगा देते हैं और महीनों तक फिर उनकी सुध नहीं लेते, इस तरह वह खाद कमजोर होजाता है और अच्छी पैदावार नहीं होती। किसानों को चाहिये कि खाद बिखेरने के बाद ही हल या बक्खर चलाकर उसे मिट्टी में मिलादें। 'माल' जमीन में हर पांचवें वर्ष गोबर की खाद देनी चाहिये और 'अड़ान' में हर तीसरे साल। गोबर की खाद इतनी अच्छी खाद है कि हर फसल को हर समय फायदा पहुंचाती है। अगर आपने अपने

खेत की मेड़ों पर गुलाब के पौधे लगा रखे हैं तो उनमें यह सड़े गोबर की खाद नहीं देना चाहिये। गुलाब में तो ताजा गोबर पानी में घोलकर देना चाहिये। इससे गुलाब में अच्छे फूल आवेंगे। स्मरण रहे यह खाद गुलाब में जेठ महीने ही में दीजाय। गुलाब के अतिरिक्त सब पौधों में सड़े गोबर की खाद देना हितकर है।

घोड़े की लीद का खाद बनाया जाता है, परन्तु यह खाद गर्म होता है। जो पशु जुगाली पागुर नहीं करते उनके मल-मूत्र का खाद गर्म होता है। चूंकि घोड़ा भी पागुर नहीं करता, इसलिये घोड़े की लीद का खाद गर्म होता है। ताजी लीद खेत में डालने से पौधे मुरझा जाते हैं। इसलिये यदि लीद का खाद खेत में डालना हो तो उसे खूब सड़ा-गलाकर डालना चाहिये। अमूमन यह खाद तीन साल में सड़कर खेतों के लायक हो जाता है। रसोई घर और पाखाने के मैले पानी को बार-बार देते रहने से लीद का खाद छः महीने में ही सड़कर तैयार होजाता है। जल्दी काम में लाना हो तो पानी देते वक्त लीद को फावड़े से उलट-पुलट कर देना चाहिये। लीद का जब तक धुएं के रंग जैसा रंग न होजाय तब तक उसे खेतों में नहीं डालना चाहिये। लीद जरा देर से गलती है, इसलिये उसे गलाकर खाद तैयार करने के लिये उसे गीली बनाये रखना चाहिये। ऊंट, हाथी, खच्चर वगैरा की लीद का खाद भी घोड़े की लीद के खाद की तरह ही बनाना

चाहिये। लीद का खाद कभी अकेला नहीं देना चाहिये। इसे गोबर के सर्द खाद के साथ मिलाकर देना अच्छा होता है।

भेड़, बकरी की मेंगनियों का खाद होता है और यह खाद गाय, भैंस के गोबर के खाद से भी अधिक लाभप्रद होता है। किसानों को चाहिये कि अपने खेत में गाजर या शलजम बोवें और थोड़े-थोड़े खेत में टट्टी की आड़ लगाकर भेड़ों और बकरियों को चरादें, इस तरह भेड़, बकरियों की मेंगनियां और मूत्र सहज ही में खेतों में पड़ जायंगे। इस प्रकार पूरे खेत को चरादें। सारे खेत में मेंगनियां और मूत्र से काफी रूप में खाद बन जावेगा।

अथवा जोते हुए खेत में भेड़-बकरियों को रातभर बिठाया जाय। एक एकड़ भूमि में ५०० भेड़-बकरियां यदि रातभर बैठें तो उस जमीन में काफी खाद हो जावेगा? भेड़, बकरियों को जितनी भूमि पर बिठाना हो उतनी दूर में टट्टियां लगाकर आड़ कर देनी चाहिये। भेड़, बकरियां किराये से लेकर अपने खेतों में बिठानी चाहिये। दक्षिण में मासिक चार आना फी भेड़ देकर किसान उन्हें अपने खेतों में बिठाते हैं। भेड़, बकरियों की मेंगनियों और मूत्र का खाद गड्ढों में डालकर भी गोबर के खाद की तरह बनाया जासकता है। इस खाद को बनाते वक्त खाद के गड्ढे में हरे-हरे पौधे भी डाल देने चाहिये। इससे खाद बहुत ही उत्तम और उपयोगी बन

जावेगा, क्योंकि पौधों में ऐसे-ऐसे रासायनिक तत्व होते हैं जो खाद को अच्छा बनाते हैं। मूत्र का खाद बड़ा ही अच्छा होता है। एक कहावत भी है—"जिन खेतन में मूतें ढोर। वे सब खेतन में सिरमोर।"

मनुष्य के पेशाब और विष्ठा का भी खाद होता है। पहिले हम पेशाब के खाद पर कुछ लिखेंगे। मनुष्य के पेशाब का खाद बहुत ही अच्छा और बहुमूल्य बनता है। एक तन्दुरुस्त जवान मनुष्य के मूत्र का वजन एक साल का १० मन पक्का होता है जिसमें लगभग २६ सेर अत्युत्तम पोषक-तत्व पाये जाते हैं। इस विषय के मर्मज्ञों का कहना है कि सौ मनुष्यों के पेशाब से लगभग १५० एकड़ जमीन में खाद दिया जा सकता है। पशुओं के मूत्र में फास्फोरस की मात्रा कम होती है, इसी कारण उनके मूत्र से मनुष्य का मूत्र खाद के लिये अधिक उपयोगी होता है। किसानों को मनुष्य मूत्र के खाद को काम में लाना चाहिये। परन्तु हमें कम आशा है। इसे अपवित्र कहकर कोई भी काम में नहीं लावेगा, परन्तु इस खाद के विषय में हम लिख देना अपना कर्तव्य समझते हैं।

मनुष्यों का पेशाब मिट्टी की कुंडी या चूने ईंट की हौज में इकट्ठा किया जाय। जब हौज या कुंडी भरजाय तो उसमें इतनी मिट्टी डालदी जाय जो उसे सोखले। इस मिट्टी को खेत या खाद के ढेर में डलवा देनी चाहिये अथवा हौज में

पहिले ही से भरदी जाय और नित्य उसमें पेशाब किया जाय, जब तर होजाय तो वह मिट्टी खेतों में या खाद के गड्ढे में डलवा दी जाय या रोज का पेशाब इकट्ठा करके खाद के गड्ढे में डलवा दिया जाय। एक तरकीब यह भी है कि ऐसा हौज बनाया जाय जिसमें ६ महीने का या १ साल का पेशाब समा सके। उसके भरजाने पर उसमें चूने का पानी डाला जाय। इससे पेशाब के उयपोगी तत्व अलग होकर पेंदी में जम जायेंगे। चौबिस घन्टे बाद ऊपर का पानी निकाल फेंकना चाहिये और तली में जमा हुआ पदार्थ खाद की भांति काम में लाना चाहिये।

मनुष्य-मूत्र कोई दुर्लभ पदार्थ नहीं है। पुतलीघरों में, जिनों में, कल-कारखानों में, कालेज स्कूलों में, सरकारी दफ्तरों में, नाटक-घर और सिनेमाओं में, जेलों में, म्युनिसिपेलटी द्वारा बनाये हुए पेशाबघरों में, स्टेशनों पर इत्यादि जगहों से मनुष्यों का पेशाब खूब मिल सकता है। परन्तु गांवों में ये बात कहां, यह तो शहरों की बात है। इसलिये गांव में मनुष्य का पेशाब प्राप्त करने के लिये खास इन्तजाम करना पड़ेगा। यदि यह काम उच्च कहलाने वाले लोग करना पसन्द न करें तो उन्हें यह काम भंगी आदि लोगों को नौकर रखकर कराना चाहिये।

पेशाब का खाद सभी जाति की फसलों में लाभ पहुंचाता है। इस खाद से एक लाभ अधिक होता है कि फसलों को

बर्बाद करनेवाले कीड़े नहीं पैदा होने पाते। एक सेर पेशाब में २ सेर पानी मिलाकर वृक्षों और पौदों पर छिड़क देने से फल वाले वृक्षों के कीड़ों का नाश हो जाता है। ज्वार, बाजरा गेहूं वगैरह को बोने के पूर्व यदि २४ घंटे तक पेशाब में भिगो लिया जाय तो गेरुआ, स्मट, रस्ट आदि रोगों के होने का भय मिट जाता है। पेशाब का खाद अकेला काम में लाना ठीक नहीं, किसी दूसरे खाद में मिलाकर डालना चाहिये।

गटर का पानी भी खाद का काम देता है। विदेशों में यह पानी बहुमूल्य समझा जाता है। गटर के पानी में फास्फरस की अपेक्षा नाइट्रोजन अधिक पाया जाता है इससे पौधे के पत्ते और शाखा खूब पनपते हैं वे लोग इस पानी को ल्युसर्न गिनी घास आदि के सींचने में अधिक काम में लाते हैं। पेरिस में गटर के पानी का अच्छा उपयोग किया जाता है। १४४ इंच पानी बरसने पर जितना लाभ होना चाहिये उतना फायदा वे गटर के पानी से उठाते हैं। पौधे अपनी जरूरत के अनुसार जल सोख लेते हैं और बाकी जल पृथ्वी में रखे गये नलों द्वारा सीननदी में चला जाता है। भारतवर्ष में भी यदि यह पद्धति काम में लाई जाय तो बहुत कुछ लाभ हो; क्योंकि उष्ण देश होने के कारण यहां पानी की जरूरत अधिक रहती है। इससे म्युनिसिपेलिटियों को भी आर्थिक लाभ होगा। बड़े-बड़े शहरों से गटरें ले जाकर आस-पास के गांवों के खेतों की अच्छी सिंचाई हो सकती है। पानी और खाद दोनों ही

बातें एक साथ सिद्ध हो जावेंगी। भारतवर्ष में तो गटरें अक्सर नदियों में छोड़ दी जाती हैं जिससे पानी के गन्दा हो जाने के कारण मनुष्यों में बीमारियां फैलती हैं। पंजाब के अमृतसर और लाहौर नगरों में गटरों से खेतों की सिंचाई की जाने लगी है। जिन गांवों तक शहरों की गटरें न पहुंच सकें वहां के निवासी यदि मनुष्य-मूत्र को प्राप्त करके खाद के काम में लाने का तरीका काम में लावें तो बहुत कुछ लाभ होगा।

मनुष्य के पाखाने से जो खाद बनता है, उसे सुनहरा-खाद (golden Manure) कहते हैं। यह सर्वोत्तम खाद गिना जाता है। इसकी उत्तमता मनुष्य की खुराक पर निर्भर है। जिस देश, नगर या गांव के लोग जितना अच्छा भोजन करते होंगे, उनके मल का खाद उतना ही अच्छा होगा। पाखाने के खाद को लोग अपवित्र समझकर इससे परहेज करते हैं; परन्तु चीन और जापान के किसान इस खाद का उपयोग बहुत करते हैं। वे मैले को अपने हाथ से उठाते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। कहते हैं कि वे घरघर घूमकर मैला मोल लेते फिरा करते हैं। चीन में तो सरकारी आज्ञा से घरघर में और मोहल्लों में बड़े-बड़े पीपे रखे हुए हैं; जिनमें मैला डाल दिया जाता है। पीपों की बनावट इस ढंग की है कि उसमें से बदबू नहीं निकलने पाती। भारत में भी यदि पाखाने से खाद बनाया जाने लगे तो करोड़ों रुपयों की आमदनी हो सकती है। मैले के खाद का मूल्य प्रति मनुष्य ५) रु.

वार्षिक कूता गया है। यदि ३३ करोड़ मनुष्यों के विष्ठा से बने खाद का मूल्य देखा जावे तो १ अरब और ६५ करोड़ रुपये होता है। हम यह चाहते हैं कि भारतीय किसान भी पाखाने के खाद का उपयोग करने लगजांय।

गांव में कुछ बाड़े मल-मूत्र त्यागने के लिये इस तरकीब से बनाये जावें कि दो हाथ गहरी जमीन खोदकर चारों ओर एक कच्ची दीवार इसी खोदी हुई मिट्टी से बनादी जाय। उसके एक ओर द्वार रखा जाय। उस बाड़े में एक हाथ ऊंची राख बिछाई जाय। इस राख में गड्ढे बना दिये जावें जिनमें लोग पाखाना फिरें और पाखाना जाने के बाद उसे राख से दबा दिया करें, जब सारा अहाता इस प्रकार पाखाने से भर जावे तब दूसरे अहाते में प्रबन्ध किया जाय। इस प्रकार पाखाने का खाद तैयार किया जा सकता है।

गांव के पास किसी ऊंची जमीन में गड्ढे खोदने चाहिये। प्रत्येक गड्ढा इतना बड़ा हो, जिसमें वर्ष भर का जितना मैला, कूड़ा कर्कट समा सके और फिर भी न भरे तो उसमें मैले के अतिरिक्त राख, हड्डी मूत्र वगैरह भी डालते रहना चाहिये। प्रतिदिन मैला वगैरह डाल चुकने के बाद उस पर सूखी मिट्टी की तह चढ़ाना चाहिये। वर्षाऋतु में उस गड्ढे पर छप्पर डाल देना चाहिये। जब गड्ढा भरजावे तो उस पर मिट्टी का थर डालकर एक साल तक योंही रहने देना चाहिये, बाद में काम में लाना चाहिये।

जिन जमींदारों की जमीन गांव के पास हो उनका खेत जिस समय खाली हो, उसमें ९ इंच चौड़ी और एक फुट गहरी नालियां आठ-आठ फीट के अन्तर पर खुदा देनी चाहिये। कुछ ऐसी हल्की टट्टियां तैयार करा लेनी चाहिये जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से रखी जा सकें। बीच-बीच में टट्टियां रखकर आड़ कर देनी चाहिये दूसरे तीसरे दिन यहां से टट्टियां सरकाकर दूसरी जगह रखा देनी चाहिये और गड्ढे दबा देने चाहिये। पहिली नालियों पर मिट्टी डला-कर उन्हें पाट देना चाहिये। थोड़े दिनों में सारे खेत में यह खाद हो जावेगा।

मैले का खाद गरम होता है। जिस खेत में मैले का खाद दिया जाय उसमें पानी बार-बार देना चाहिये। एक बार मैले का खाद देने पर तीन चार वर्ष तक खाद की आवश्य-कता नहीं रहती। मैले की बदबू हटाने के लिये "सिलीफेट ऑफ आरशिया" बहुत ही लाभदायक है। कसीस के पानी से भी मैले की बदबू चली जाती है। २० मन से ७५ मन तक फी एकड़ मैले का खाद दिया जा सकता है। एक इंच मोटी खाद की थर खेत में काफी होगी। यह खाद ईख, ज्वार और कपास के लिये बहुत अच्छा है।

हड्डी की खाद भी होती है। हड्डी के खाद से फल अधिक लगते हैं और फल-फूल मीठे होते हैं। खेत शीघ्र पकता है। शुरूआत में फसल को कीड़ा नहीं लगता। भारत

में हड्डियों के खाद का उपयोग कम होता है। विदेशों में हड्डी का खाद बहुत काम में लाया जाता है। यहां से हरसाल करोड़ों मन हड्डियां जहाजों में लदकर विदेशों में पहुंच जाती हैं। वहां ये खाद के काम में लायी जाती हैं। यूरोप में हड्डियों के खाद की कीमत २०) फी मन है। यदि यहां हड्डी का खाद तैयार किया जाय तो ५) मन में तैयार हो सकता है। हड्डियों में फास्फरस का भाग ज्यादा होता है; इसलिये यह खाद भी अच्छा होता है। किसान को चाहिये कि जहां उसे हड्डी मिले चूरा करके खेत में डालदे। हड्डी का खाद इस तरह बनता है:—

१. किसी गहरे गड्ढे में १॥ फुट हड्डियां और उस पर दो तीन अंगुल गोबर डालकर गो-मूत्र या अरवी (घुइयां) पौधे के पत्ते अथवा अन्य मुलायम बनस्पति देकर भर देते हैं। सख्त मिट्टी से गड्ढे का मुंह बन्द करके उसे छः महीने तक गलने देना चाहिये। बाद में उन्हें निकालकर पीस लेना चाहिये। यह खाद फी बीघा एक मन के हिसाब से डालने पर पैदावार बहुत होती है।

२. जितना हड्डियों का वजन हो उतना ही सलफरिक एसिड (गन्धक का तेजाब) पानी में मिलाकर हड्डियों में डालें और दो तीन दिन तक किसी चीज से हड्डियों को हिला दिया करें। खाद तैयार हो जावेगा और भी जल्दी तैयार करना हो तो हड्डी को चूर्ण करके डालना चाहिये, खाद बन जावेगा।

३. अथवा एक गड्ढे में एक थर भैंस के ताजे गोबर की दी जावे, उसके बराबर ही हड्डी का थर देकर फिर ऊपर से ताजा गोबर का थर दिया जावे। बाद में पशु-शाला का पेशाब छिड़का जावे, फिर पूर्ववत् गोबर और हड्डी का थर दिया जाय। जब गड्ढा भर जाय तो ऊपर मिट्टी का थर देदें। ६ महीने के बाद यह खाद काम में लाई जा सकती है।

हड्डी का खाद अपना असर तीन चार बर्ष तक रखता है, इसलिये तीन चार साल के बाद ही हड्डी का खाद फिर दिया जाना चाहिये।

खाद बनाने की कई विधियां हम बता चुके। अब यहां वानस्पतिक खाद (Vegetable manures) पर अति संक्षेप से लिखेंगे। वृक्ष, पौधे, पत्ते आदि से जो खाद तैयार होता है उसे वानस्पातिक या हरी खाद कहते हैं। कोई भी फलीदार वस्तु खेत में बो देना चाहिये, जब उस फसल में फलियां लगने वाली हों तब उसे काटकर या हल चलाकर खेत की मिट्टी में मिला दिया जाय। कुछ समय बाद वह सड़-गलकर खाद बन जावेगा। यह बहुत ही उत्तम खाद होता है। हरी खाद वाले खेतों को पानी की भी ज्यादा जरूरत नहीं रहती। जहां किसी दूसरे किस्म का खाद न मिलता हो वहां यह हरा खाद बड़ी ही अच्छी चीज है। सूखा खाद भी जैसे वृक्ष की पत्तियाँ, गेहूँ आदि का भूसा भी खेतों में डाला जा सकता है। खली का खाद भी खेतों में

दिया जाता है। जापान तो प्रतिवर्ष कई लाख रुपयों की खली सिर्फ खाद के लिए चीन से खरीदता है। राख की खाद भी दी जाती है। कुम्हार की भट्टी की राख, पत्तों की राख, पौधे-वृक्ष और लकड़ी की राख, कंडों और लीद की राख, खेतों में डालने से खाद का काम देती है। धान का भूसा, गेहूँ का छिलका, चोकर, बिनौले की खली, ईख का छूछन, समुद्री-घास, सेंवार, कंजी, काई, आक, पलास के फूल, टेसू, पाट के डंठल, सन, थूहर, कुलथी आदि कई चीजों से खाद बनता है। किसानों को हरा खाद काम में लाकर देखना चाहिये।

खनिज खादों (Mineral manures) में भी कई तरह के खाद होते हैं। खनिज खादों में वह खाद अच्छा होता है जो शीघ्र घुलने वाला हो। चूना, नमक, सड़ी हुई मिट्टी, लोहे का चूर्ण आदि से भी खाद बनाकर खेतों में डाले जाते हैं। हम अब इन खादों पर विशेष लिखना नहीं चाहते, क्योंकि यदि हमारे किसान भाइयों ने हमारे ऊपर लिखे खादों पर ही ध्यान दिया तो बहुत कुछ उन्हें लाभ पहुँचेगा। आशा है हमारे देहाती भाई मेरे इतने लिखने पर थोड़ा-बहुत ध्यान जरूर देंगे। इस विषय पर मैंने इसलिए अधिक लिखा है कि ग्रामीण भाइयों के मुख्य जीवन कृषि का 'प्राण' खाद है। कहा भी जाता है कि—"खाद पड़े तो खेत, नहीं तो कूड़ा और रेत" और "खाद देओ तो होवे खेती, नहीं तो

रहे नदी की रेती"। मुझे आशा है कि ग्रामीण बन्धु इस पर अवश्य विचार करेंगे।

सहयोग-समिति।

सहयोग का आरम्भ सृष्टि की आदि से ही हुआ है, क्योंकि बिना सहयोग के संसार का काम चलना नितान्त असम्भव है। किसी भी देश का इतिहास उठाकर देख जाइये, हर जगह आपको यही दिखाई पड़ेगा। स्त्री-पुरुष घर के लोग, कुटुम्बी लोग, मोहल्ले वाले, यारदोस्त, इष्टमित्र वगैरह मिल-जुल कर काम करते हैं। "सहयोग" शब्द का अर्थ, आपस में मिलजुल कर कार्य करना है। बहुत से ऐसे काम होते हैं जिन्हें एक व्यक्ति त्रिकाल में भी नहीं कर सकता। परन्तु यदि एक से ज्यादा उन्हीं कामों के लिये जुट पडें और जुट जावें तन, मन, धन से तो कोई भी ऐसा काम इस संसार में दिखाई नहीं देता जो हो नहीं सके। बोझे का उठाना, मकान बनाना, पाठशालाओं को चलाना, अधिक भोजन बनाना, लड़ाई, इत्यादि बड़े-बड़े कार्य बिना सहयोग के नहीं हो सकते। संसार में प्राकृतिक कार्य भी बिना सहयोग के नहीं होते, इसलिये ग्राम में एक "सहयोग-समिति" की स्थापना अवश्य होनी चाहिये।

उदाहरण के लिये एक विद्यार्थी को ले लीजिये जो कालेज के एक उच्च दर्जे में पढ़ता है। निर्धनता के कारण वह कोर्स की सब पुस्तकें नहीं खरीद सकता। अब वह यदि अपने

ही भरोसे रह जावे तो वह कुछ भी लिख पढ़ नहीं सकता, किन्तु यदि वह अपने जैसे और २-४ विद्यार्थियों का सहयोग प्राप्त करे और थोड़ा-थोड़ा रुपया सब देकर कोर्स की किताबें खरीद लें तो सब काम सहज ही में बनजाता है। बारी-बारी से मिलजुल कर उन किताबों से पढ़ा जा सकता है। कोर्स खत्म हो जाने पर यातो पुस्तकों का आपस में बटवारा करा लिया जाय या उन्हें बेंचकर पैसों को बांट लिया जाय। इस तरह सहयोग द्वारा बड़ी ही आसानी से कार्य भी सुगम बन सकते हैं।

यह सहयोग-नियम कुछ ही वर्षों से पुस्तकों में आगया है। इस विषय पर अनेक पुस्तकें शास्त्र हैं। सशास्त्र सहयोग पहिले-पहिले जर्मनी में प्रचलित हुआ था। प्रुशिया के वीर सम्राट् फ्रेडरिफ ने सब से पहिले सहयोग-समिति का आविष्कार किया। एक फर्मान निकाला गया, जिसमें उसने किसानों को एक संस्था बनाकर, सहयोग पूर्वक काम करने की आज्ञा दी। उन दिनों जर्मन प्रजा की दशा वर्तमान भारतीयों से भी कहीं अधिक बुरी थी। शूल्बडी लिट्ज महाशय का हृदय अपने गांव डी-लिट्ज के लोगों की दुर्दशा देखकर विदीर्ण होने लगा। उनने बहुत सोच-विचार के बाद सन १८४६ ई. में एक संस्था कायम की। यह संस्था सर्वसाधारण मनुष्यों के हित के लिये थी। इससे जनता को बहुत लाभ हुआ। इन संस्थाओं की संख्या सन १९०० ई. में करीब २७००

के पहुंच गई। इनके सभासद मजदूर, मल्लाह, कारीगर, किसान, पोस्ट वाले, रेल वाले सभी स्त्री-पुरुष हैं।

शूल्ज संस्थाओं से खेती करने वालों को कोई लाभ नहीं पहुंचा, क्योंकि संस्था संचालकों की इच्छा नफे की तरफ़ अधिक झुकी हुई थी। हिस्से की रकम बड़ी होने से बेचारे गरीब लोग हिस्सेदार न हो सके। कर्ज भी सिर्फ ३ महीने ही के लिये मिलता था। किसानों को १२ महीने तक की जरूरत होती है। इस कारण गरीब किसान शूल्ज संस्थाओं से लाभ न उठा सके।

किसानों पर रैफाइसन महाशय को दया आई और उन्हों ने भी सन १८४९ ई. में नई संस्था खोली। यह क्रेमेंसफेल्ड गांव वालों को कर्ज देने के लिये खोली गई। इस प्रकार की संस्थाओं की संख्या सन १८८५ ई. में २४५ तक पहुंच गई। और १८९६ ई. तक एक दम २००० हो गई।

इटली में लुज्जाटी तथा बोलेम्बर्ग ने सहयोग-समिति का आरम्भ किया। फ्रांस में रेनेटी ने शुरूआत की और इंगलैण्ड में राचडेल पायोनियर्स ने झंडा फहराया। भारतवर्ष में सब से पहिले सरविलियम वैडेर्बन ने "सहयोग-समिति" का प्रस्ताव उठाया। किन्तु १९१५ तक कुछ भी नहीं हुआ। १८९५ ई. में फेडरिक निकोल्सन को यूरोप इसलिये अपने खर्चे से सरकार ने भेजा कि वह इस बात का पता लगावे कि सहयोग-समिति को किस ढंग से भारत में चलाया जा सकता है। उन्होंने

अपने भ्रमण का वृत्तान्त " Land Banks for the Madras Presidency " (लैण्ड बैंक फॉर दी मद्रास प्रेसीडेन्सी) नाम से दो भागों में प्रकाशित कराया। इधर यू. पी. के लार्ड टामसेन साहब ने मि. ड्यूयर्नै का इस विषय में विचार करने का अनुरोध किया। फल स्वरूप उन्होंने Peoples Banks N. I. (पीपुल्स बैंक्स नार्दन इंडिया) नामक पुस्तक लिखी। सन १९०१ में लार्ड कर्जन ने एक कमेटी बनाई और सन १९०४ में "सहयोगिता" का पहिला एक्ट पास हुआ। इसके बाद समय-समय पर इस एक्ट में सुधार और संशोधन होते गये। यह "सहयोगिता" का संक्षेप में इतिहास हुआ।

"सहयोग समिति" क्या है और इसका उद्देश क्या है यह बात अब आप लोगों की समझ में अच्छी तरह से आगई होगी। "सहयोग समिति" प्रत्येक कार्य के लिये स्थापित की जा सकती है। परन्तु यहां हम देहातों के लिये "सहयोग समिति" की जरूरत केवल "बैंक" स्थापित करने के लिये ही समझते हैं। क्योंकि गांवों के लोगों को अक्सर रुपये पैसे की सख्त जरूरत पड़ती रहती है और निर्धनता उन्हें पैसे वालों से रुपया कर्जा निकालने के लिये विवश करती है। तब वे किसी धनी के आगे हाथ फैलाते हैं और खूब ब्याज देकर वहां से रुपया लेआते हैं। जो किसान एकबार साहूकार के चंगुल में फँसा कि बस फिर फँसा ही समझें। ब्याज बढ़ी

तेजी से बढ़ता है उधर साहूकार फसल, जमीन वगैरा लिख लेता है। फसल आते-आते साहूकार उसकी छाती पर जा-बैठता है और सब फसल अपने घर उठा लाता है। दैवयोग से यदि फसल ठीक आगई तो खैर समझिये नहीं तो बिचारे किसान की जमीन बैल, ढोर, डांगर, मकान वगैरा तक पर साहूकार कब्जा करलेता है तोल में, हिसाब में सब तरह से किसान को जोंक की तरह चूसने लगता है देखते २ किसान को भरपेट अन्न तक न मिलने की बारी आजाती है। इन सब बातों से छुटकारा पाने के लिये प्रत्येक गांव में एक सहयोग समिति की इसलिये स्थापना की जाय कि उससे किसानों को साधारण ब्याज पर रुपया मिल जाया करे। यदि हरएक गांव में ऐसा होना कठिन हो तो ९-१० गांवों में एक "को-आपरेटिव बैंक" की स्थापना अवश्य ही होजानी चाहिये।

जो रुपया एक व्यक्ति को अपने विश्वास और जिम्मेदारी पर बहुत कष्ट तथा प्रयत्न करने पर भी नहीं मिल सकता वह रुपया कुछ आदमियों द्वारा मिलकर संस्था कायम करने से शीघ्र ही मिल जावेगा। यही सहयोगिता का मुख्य उद्देश और लाभ है। रकम इकट्ठी हो जाने पर जो काम पहिले धनाभाव से असम्भव हो रहे थे सहज ही में होने लगते हैं। पूंजी सहज ही में इसलिये मिल जावेगी कि लोग उससे अपना ही फायदा समझकर उसमें अपना रुपया देंगे और उन्हें मुनाफा साधारण ब्याज भी मिल जावेगा। रुपया भी सुरक्षित रहेगा।

ग्रामीण भाइयों को यह कार्य "ग्राम सभा" के सिपुर्द कर देना चाहिये और यह अनुमान लगाना चाहिये कि अपने गांव में कितने रुपयों के मूलधन की जरूरत है ? जितनी पूंजी की जरूरत हो उतने रुपयों के संग्रह के लिये हिस्से निकाल देने चाहिये। जहां तक होसके हिस्सों की रकम बहुत बड़ी न हो। साधारण स्थिति का मनुष्य भी एकाधा हिस्सा खरीद सके इस बात का ध्यान रखना चाहिये। किश्तें भी भारी और जल्दी-जल्दी न वसूल करके फसलों के आने के वक्त सुविधानुसार की जावें। जब समिति में इच्छित मूलधन हो जावे तब डायरेक्टर्स और मैनेजर तथा बैंकर कायम करके इस संस्था की सरकार से रजिस्ट्री कराली जाय।

बैंक की रजिस्ट्री होजाने पर उचित ब्याज से किसान की हैसियत के अनुसार मुकर्रर अवधि के लिये रुपये कर्ज देना चाहिये और वक्त पर रुपया न आने पर जो कुछ भी कार्रवाई हो उसे करना चाहिये। इस तरह "सहयोग समिति बैंक" चलाने से गांव की दशा देखते ही देखते कुछ वर्षों में सुधर जावेगी, गांव की निर्धनता दूर होकर वहां सुख और शान्ति दृष्टि आने लगेगी। सहयोग समिति स्थापित करके गांव वालों को अपनी आर्थिक दशा अवश्य सुधार लेनी चाहिये क्योंकि आर्थिक दशा के ठीक होते ही बाकी और सुधार सहज ही किये जा सकेंगे।

सफाई

गांवों की सफाई

प्रकृति ने गांव वालों को जो-जो विशेषताएं प्रदान की हैं उनमें यदि "सफाई" को सम्मिलित कर दिया जाय तो गांव भूतल के स्वर्ग बन सकते हैं। गांवों में स्वच्छता की तरफ अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। गांव मैले होते हैं, घर मैले होते हैं और गांवों के निवासी भी मैले हैं। यदि गांवों में स्वच्छता आ-जावे तो बहुत कुछ सुधार हो गया समझना चाहिये। सब से पहिले गांवों की सफाई आवश्यक है।

अक्सर गांवों के बसने का ढंग कुछ बे सिलसिले होता है। न कहीं सीधी और चौड़ी गलियां ही होती हैं और न कहीं चौड़े मार्ग ही होते हैं। गांव बसाते वक्त कम से कम इस बात का ध्यान अवश्य ही रखना चाहिये कि गांव की सड़कें इतनी चौड़ी जरूर हों जिन पर दो बैल गाड़ियां बराबर से निकल सकें। मकान एक कतार में सिलसिले से बनाये जांय। यह काम सभा के सुपुर्द होना चाहिये। ग्राम-सभा कैसी हो और उसके सिर्पुद क्या-क्या काम हों यह बात हम आगे चलकर बतलावेंगे। घर कैसे बनाये जावें ? इसका एक खास नमूना होना चाहिये। गांवों की गलियां और सड़कें नित्य साफ होती रहें इसका प्रबन्ध होना चाहिये। फी गांव पीछे एक भंगी या एक से अधिक गांवों पीछे एक भंगी रखना

चाहिये। जो नित्य नहीं तो दूसरे तीसरे दिन आकर गांव में सफाई कर जाया करे। गांव के लोग यदि इस बात का ध्यान रखा करें कि घर का कचरा-कूड़ा बाहर न डालें और बाल-बच्चों को घरों के सामने पाखाना वगैरा न बैठावें तो सफाई के लिये भंगी के रखने की भी जरूरत पेश न आवेगी। जो कुछ भी ढोरों के आने जाने से या घास-फूंस लाने से कचरा फैल जावे वह प्रत्येक घर का मालिक अपने-अपने घर के आगे से साफ कर दिया करें, इस तरह भी गांव की सफाई अच्छी रह सकती है।

गांवों के लोग प्रायः अपने घरों में पाखाने नहीं बनवाते और न बनवाने की जरूरत ही है; क्योंकि घनी बस्ती न होने के कारण गांव से बाहर जंगल में शौच के लिये जाना बिल्कुल कष्ट-दायक नहीं होता। शहरों और कस्बों के लोग जो जंगल में पाखाना जाने के लिये तरसा करते हैं वह गांव के लोगों को सहज ही में प्राप्त है। हाँ गांवों के लोग इतनी भूल अवश्य करते हैं कि गांव के पास ही पाखाने बैठ जाते हैं। इतना तो ध्यान रखना ही चाहिये कि पाखाने के लिये गांव से एक दो खेत दूर अवश्य जाया जाय। और रास्तों से, जला-शयों से और लोगों के घूमने-फिरने की जगह से दूर ही पाखाने बैठा जाय। पहिले जमाने में यह नियम था कि लोग पाखाने जाते वक्त एक ऐसा औजार भी साथ में ले जाया करते थे जिससे ज़मीन में गड्ढा खोदकर उसमें पाखाना फिरकर

फिर उसे मिट्टी से पाट दिया करते थे, इससे एक नहीं अनेक लाभ होते थे। दुर्गन्ध नहीं फैलने पाती थी, पशु उसे नहीं खा सकता था और खेतों के लिये अच्छे खाद का काम देता था। अब इस जमाने में इतना नहीं हो सकता हो तो गांव से दूरी पर, रास्ता और नदी, तालाब को बचाकर पाखाने बैठना चाहिये।

गांवों में अक्सर गोबर और कचरे का ढेर घरों के सामने ही बिल्कुल पास होता है; और खूब होता है। यद्यपि यह किसानों के लिये एक अत्यावश्यक वस्तु है; क्योंकि खेतों की उपज बढ़ाने के लिये यह खाद होता है; तथापि दुर्गन्ध युक्त होने के कारण ग्राम के स्वास्थ्य को भयंकर हानि पहुंचाता है, इसलिये गांव की तरफ बहनेवाली हवा का रुख बचाकर गांव से दूरी पर ही किसी एक दिशा में गोबर और कचरा-कूड़ा डालने का स्थान मुकर्रर कर लेना चाहिये। गांवों के चारों तरफ कचरे-कूड़े की बदबू उड़ने देना बिल्कुल ठीक नहीं है। खाद बनाने के लिये गड्ढे खोदकर यदि उनमें यह कचरा-कूड़ा डाला जाय तो बहुत ही अच्छी बात है, इस विषय में हम अपने 'खाद' प्रकरण में विस्तारपूर्वक लिख आये हैं।

मसान, जहां हिन्दू लोग मुर्दे जलाते हैं, और कबरस्तान, जहां मुसलमान अपने मुर्दे गाड़ते हैं, गांव से दूरी पर होने चाहिये। कम से कम इतनी दूर तो जरूर ही हों कि मुर्दा जलने की दुर्गन्धित हवा गांव तक किसी भी हालत में नहीं

पहुंच सके। कब्रस्तान के लिये भी ऐसी दिशा होनी चाहिये जिधर की हवा अक्सर गांव की तरफ न आती हो। इसी तरह पशुओं का चमड़ा निकालने का स्थान भी गांव से दूर ही रखा जावे। यदि पशुओं के मृत शरीर को गाड़ा जावे तो गांव से बहुत ही दूरी पर एकान्त में गाड़ा जावे।

गांवों की बारिश के मौसम में बड़ी ही घिनौनी हालत हो जाती है। घरों के सामने और गांवों के चारों तरफ कीचड़ ही कीचड़ हो जाती है। उसमें पशुओं का मल-मूत्र मिल जाने से और भी खराब दशा हो जाती है। छोटे-छोटे गड्ढों में मैला पानी भरा रहता है, जिन पर मक्खियां और मच्छर भिन्नाया करते हैं। इसके अलावा गांव के बाहर छोटे-छोटे गड्ढे या तलइयां भी होती हैं जिनमें भैंसें लोटा करती हैं और उन्हीं में मूत्र और गोबर भी करती हैं। इन्हीं गड्ढों का ढोरों को पानी पिलाया जाता है और ग्रामीण लोग पाखाने के बाद इसी गड्ढे के पानी से अपने हाथ मुंह वगैरा साफ करते हैं। तन्दुरुस्ती की दृष्टि से यह अत्यन्त बुरा है। गावों की सड़कों में के गड्ढे, घरों के आसपास के गड्ढों को मिट्टी या पत्थर-कंकरों से बराबर करदेने चाहिये और ऐसे ताल-तलैयों का पानी निकाल देना चाहिये। यदि पानी निकालना असम्भव हो तो उसे भी पाट देना चाहिये अथवा उसका पानी काम में नहीं लाना चाहिये। बारिश खत्म होने के बाद इन्हीं

गड्ढों से गांव में अनेक रोग फैल जाते हैं। इसलिये इस ओर ध्यान देने की बहुत जरूरत है।

परन्तु यहां यह प्रश्न होता है कि "इस काम को करे कौन? किसे गर्ज पड़ी कि, वह अपना काम-धन्धा छोड़कर यह ठाला काम करता फिरे? इसके लिये 'ग्रामसभा' को प्रयत्न करना चाहिये। और उसके अन्तर्गत जो 'सेवादल' हो वह इन कामों को करे। जब तक गांव के लोग एक दूसरे के सुख-दुख को अपना सुख-दुख मानकर काम नहीं करेंगे तब तक गांवों का सुधार कदापि नहीं हो सकता। सब के फायदे का काम करने के लिये प्रत्येक ग्रामवासी को हमेशा तैयार रहना चाहिये। ऐसा होने से जो एक बड़ी-भारी असुविधा की दीवार सामने खड़ी है नष्ट हो जावेगी और हर-एक काम सरलता से चल निकलेगा।

घरों की सफाई

घर की सफाई रखने के लिये पहिले घरों की बनावट अच्छी होनी चाहिये। अच्छे बने हुए मकानों की सफाई, बिना किसी कष्ट के सहज ही अच्छी तरह रखी जा सकती है। इसका यह मतलब नहीं है कि बेढंगे बने हुए मकान साफ-सुथरे नहीं रखे जा सकते। नहीं, पतरों की बनी झोंपड़ी भी साफ रखी जा सकती है।

मकान किसी गड्ढे में या झील में, जहां आस-पास की जमीन ऊँची हो, हर्गिज नहीं बनाना चाहिये। मकान की

कुर्सी ऊँची रहनी चाहिये। आस-पास की भूमि समतल या कुछ ढालू होनी चाहिये। मकान की दीवारें सीधी-सच्चीं, लिपी-पुतीं रहनी चाहिये। दीवारों में अधिक आले, ताक नहीं होनी चाहिये। दीवारें काफी ऊँची और दर्वाजे भी काफी ऊँचे और चौड़े बनवाने चाहिये। मकान में हवा और सूर्य की धूप आने के लिए बारियां, खिड़कियाँ जरूर बनवानी चाहिये। खपरेल के मकान वाले यदि खिड़कियां न भी बनावें तो कोई हर्ज नहीं; परन्तु पतेर, घासफूस और पक्की छत वाले मकानों में जिनमें हवा आने का कोई भी जरिया न हो, खिड़कियाँ अवश्य ही बनाई जानी चाहिये। मकान में छोटे-छोटे कोठे या कोठियाँ न बनाई जावें। बड़े-बड़े दालान तन्दुरुस्ती के लिए अच्छे होते हैं। मकान में दरवाजे और खिड़कियां एक दूसरे के आमने-सामने ही रखनी चाहिये। इससे मकान में की हवा हमेशा साफ रहती है।

मकान जहां तक हो सके ईंट, चूने या पत्थर-चुने के बनाये जावें। जिनके पास पक्के मकान बनाने के लिए पैसा न हो वे ईंट मिट्टी के ही बनालें, परन्तु उनकी दीवारें साल में दो बार चूने कलई से पोत दिया करें। मकान का फर्श यदि कच्चा हो तो उसे समय-समय पर गोबर मिट्टी से लिपवाते रहना चाहिये। घरों में व्यर्थ की निकम्मी वस्तुएँ रखने से वहां की हवा खराब हो जाती है; इसलिए जरूरी-जरूरी चीजें ही रखनी चाहिये। रद्दी और अनावश्यक चीजों के

लिए एक कोठरी अलग ही होनी चाहिये । गांवों के लोग अपने घरों में प्रायः अन्न भरने की कोठियां रखते हैं । जहां तक हो, सके सोने-बैठने के स्थान में अन्न की कोठियाँ नहीं रखना चाहिये । रसोई बनाने का घर अलग ही रखना चाहिये। घर में मैले-कुचैले कपड़े जहां-तहां नहीं टँगे होने चाहिये। ओढ़ने बिछाने के कपड़े बहुत ही साफ होने चाहिये । फटे भले ही हों, किन्तु मैले न हों । घर में जो चीज जिस जगह रखनी चाहिये वह उसी जगह रखी गयी हो । शाक, भाजी, अन्न, अथवा दूसरी कृषि-सम्बन्धी वस्तुएँ रहने के घर में नहीं भर देनी चाहिये ।

पशुशाला मकान के पास ही अच्छे ढंग से बनाई जानी चाहिये । एक पशु के उठने-बैठने, घूमने-फिरने योग्य स्थान रखकर बाद में दूसरे पशु का खूँटा गाढ़ना चाहिये । पशु सब एक कतार में, फासले-फासले पर एक ही तरफ मुँह करके बांधने चाहिये । ढोर बांधने की जगह पीछे की तरफ थोड़ी ढाल रखनी चाहिये ताकि पशुओं का पेशाब पीछे की ही तरफ बह जाया करे । ढोरों का गोबर, लीद वगैरा जहां तक हो सके तत्काल उठा-फेंकना चाहिये । मकान के अन्दर पशुओं के मल मूत्र को इकट्ठा नहीं करना चाहिये । कण्डे-खाने वगैरा मकान में नहीं थापने चाहिये । पशुओं का चरा हुआ घास-फूंस कचरा-कूड़ा व्यथ ही घर में नहीं भर रखना चाहिये । वर्षाऋतु में पशुशाला की सफाई रखने की विशेष आवश्यकता रहती है।

इस बात का प्रत्येक देहाती भाई को विशेष ध्यान रखना चाहिये।

घर का आंगन बहुत ही साफ रखने की जरूरत है; क्योंकि घर की सफाई के लिये घर का आंगन साफ होना आवश्यक है। आंगन में थूकना, कफ डालना, कुल्ले वगैरा करना, गीला करना, पेशाब करना या बच्चों को पाखाना बिठाना बहुत ही बुरा है। जहां तक होसके आंगन बिल्कुल साफ झाड़ा-बुहारा हुआ और लिपा-पुता रहना चाहिये। आंगन के बीच में तुलसी के वृक्ष और एरण्ड के पेड़ लगा देने से सारे घर भर की हवा शुद्ध रहती है। इन वृक्षों से मलेरिया आदि ज्वरों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

गांवों के लोग अपने मकानों पर तोरइ, कद्दू, लौकी, गिलकी आदि की बेलें चढ़ाते हैं। यह ठीक नहीं है। मकान के अहाते की दीवारों पर घास-फूस, कचरा-कूड़ा नहीं ऊगा रहने देना चाहिये। दीवारों की रक्षा के लिये जो पत्ते वगैरा बारिश में रखे जाते हैं उन्हें बारिश खत्म होते ही हटा देने चाहिये। व्यर्थ के झाड़-झंखड़, पौधे, वृक्ष वगैरा घर में या घर के बाहर आस-पास भी नहीं रहने देने चाहिये।

गांवों के लोग अक्सर घरों में पाखाना नहीं बनवाते। स्त्री-पुरुष, बूढ़े, जवान, बच्चे सभी गांव के बाहर खुले मैदान में शौच जाते हैं। जिन लोगों के घरों में पाखाने हों उन्हें उनकी सफाई पर बहुत ध्यान देना चाहिये। जहां तक बन

पड़े पाखाने चूने, पत्थर ही से बनवाये जावें। और उन्हें झाड़-बुहार कर बहुत साफ रखे जावें। लोगों का प्रायः यह खयाल रहता है कि "पाखाने की सफाई की जरूरत ही क्या है, क्योंकि वह गन्दी जगह है। वह तो मैले ही के लिये बना है। क्या वहां दिन भर बैठना है जो सफाई रक्खी जावे" इत्यादि। परन्तु ऐसा विचार करने वाले भूल करते हैं। पाखाने की जितनी ज्यादा सफाई रखी जावेगी उतनी ही तन्दुरुस्ती भी ठीक रहेगी। गन्दे पाखाने में हजारों बीमारियों के छोटे-छोटे जीव छुपे रहते हैं जो मनुष्य के शरीर पर समय पाते ही अपना आक्रमण कर बैठते हैं; इसलिये पाखानों की सफाई घरों की सफाई में एक बहुत ही जरूरी बात है।

छूत-छात का ध्यान रखने वाले लोग अपने हाथों अपने पाखानों को लीपना-पोतना पसन्द नहीं करेंगे। यदि ऐसा हो तो किसी मजदूर से या मेहतर-भंगी वगैरा से उसे हर छठे महीने तो कम से कम एक बार जरूर ही लिपा-पुता देना चाहिये। यदि पाखाना पत्थर, चूने का बना हो तो हफ्ते में दोबार नीचे की जमीन और दो-दो फीट दीवारें पानी से धो देनी चाहिये और यदि कच्चा हो तो गोबर से लिपवाते रहना चाहिये। हर छठे महीने कलई से पुता देना चाहिये और दो-दो फीट ऊंची दीवारें डामर-तारकोल से पुतवा देनी चाहिये। कभी-कभी फिनायल नामक तेल पानी में घोलकर छिड़कते रहना चाहिये।

भंगियों को हिदायत देदेनी चाहिये कि वे मैला गांव के पास न डालें और योंही न फेंक जावें, बल्कि एक गड्ढा खोदकर उसमें पाखाना डालें और ऊपर से मिट्टी डालकर उसे बूरदें। पाखाना जलाने की विधि गांवों में नहीं चलाई जानी चाहिये। यह बहुत ही बुरी रीति है। हां, खेतों में गड्ढे कराके उनमें पाखाना दबवा देने में बहुत ही लाभ है। जापानी लोग तो वहां घर-घर से पाखाना खरीदते हैं और अपने नौकरों द्वारा खेतों में खाद के लिये पहुंचाते हैं। वहां चलती-फिरती टट्टियां प्रत्येक किसान अपने-अपने खेतों में रखता है और उनमें जाने वाले लोगों को कुछ रकम दी जाती है।

घरों की नालियां, मोरियां खूब साफ रहनी चाहिये। बर्तन वगैरा धोने का पानी, स्नान का पानी और ऐसा ही दूसरा गन्दा-पानी, ऐसी जगह डालना ठीक है, जहां जल्द सूख सके। कहने का सारांश यह है कि घर को झाड़-बुहार कर, लीप पोतकर, सब तरह से बहुत साफ रखना चाहिये। इस प्रकार की सफाई से गांव देवताओं के बसने योग्य पवित्र भूमि बन सकते हैं।

बदन की सफाई।

गांव की और घरों की सफाई के लिये शारीरिक सफाई की भी अत्यन्त आवश्यकता है। गांवों के लोगों का शरीर

बहुत ही मैला रहता है। बड़े होने पर तो फिर भी कुछ सफाई की तरफ ध्यान जाने लगता है, किन्तु छोटे २ बच्चे तो अत्यन्त ही मैले देखे जाते हैं। यही हालत स्त्रियों की भी है। गांव के लोगों के शरीरों से दूरी पर होते हुए भी बदबू आती है। इन लोगों का सफाई के लिये कहना है कि "हम इतने गरीब हैं कि सफाई में कुछ भी खर्च नहीं कर सकते।" परन्तु यह इन-लोगों का निरा बहाना है। दूसरे लोगों का कहना है कि "स्नान वगैरा के लिये फुरसत नहीं मिलती" ऐसा कहना भी सरासर झूठ है। जिसे रोटी खाने, तमाखू पीने और इधर उधर की गप्पें हांकने के लिये तो काफी वक्त मिले और शरीर की सफाई के लिये वक्त ही न मिले! यह कैसे सम्भव माना जा सकता है। मेरे विचार से तो यदि वास्तव में देखा जावे तो देहाती लोग शारीरिक शुद्धि के महत्व और लाभ को नहीं जानते। यदि बदन की सफाई का फायदा उन्हें समझा दिया जाय तो फिर वे कभी भी भूलकर ऐसा नहीं कहेंगे।

धर्म के दस लक्षणों में से पवित्रता भी एक है। किन्तु गांवों के रहने वाले धर्माचार्य, ब्राह्मण, साधु आदि भी साफ-सुथरे नहीं पाये जाते। बदन को धो पोंछकर साफ रखना और कपड़े साफ-सुथरे रखना, दोनों बातें तन्दुरुस्ती ठीक रखने के लिये उतनी जरूरी हैं जितनी कि जीवन रखने के लिये "भोजन" आवश्यक है। सफाई में कुछ भी खर्च नहीं होता। थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि कुछ खर्च भी

होता है तो वह दूसरी तरफ बचत के रूप में मिल जाता है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि—"भैरूजी बहुत सुथरे वस्त्र पहिनता है नित्य अच्छी तरह स्नान भी करता है। इसमें उसे एक रुपया मासिक खर्च होता है—साल के १२) रुपये हुए। लेकिन नाथूजी न तो कभी नहाता ही है और न साफ वस्त्र ही पहिनता है। इसलिये उसकी तन्दुरुस्ती बिगड़कर वह बीमार हो गया। फसल तैयार थी परन्तु बीमार पड़ जाने से कुछ भी नहीं कर सका। १५ दिन बाद बीमारी से उठा तो उसे मालूम हुआ कि ४०-५०) रुपये के नुकसान में आगया है।" इत्यादि विचारों से समझा जा सकता है कि बदन की सफाई एक निहायत जरूरी बात है। गांवों के लोग यदि इस खामी को निकालदें तो एक बड़ा भारी सुधार हो गया समझिये।

ईश्वर कृपा से गांवों में शुद्धवायु मिलता है। जीवन भी सादा होता है। इसमें अगर सफाई को और मिला दिया जाय तो, सोना और सुगन्ध हो जाय। हम, देहाती भाइयों को बदन की सफाई की कुछ बातें बतादेना चाहते हैं।

उठते ही पाखाने जावें; और जहां तक हो जंगल ही में जावें तो अच्छा हो। पाखाने में निपटकर अपनी गुदा को साफ पानी से अच्छी तरह धोडालें। स्मरण रहे, गांव के लोग साफ पानी का जरा भी ध्यान नहीं रखते। कैसा भी गन्दे से गन्दा पानी मिल जावे, वे उसे काम में लाने से जरा भी नहीं

हिचकिचाते। यह बहुत ही भूल है। गन्देपानी को काम में लाने से मस्से का रोग—बवासीर अक्सर हो जाया करता है। इसलिये साफ पानी ही काम में लाना चाहिये। मूत्रेन्द्रिय और गुदा-इन्द्रिय को पानी से अच्छी तरह धो डालनी चाहिये। हिन्दू शास्त्रों में तो इन्हें मिट्टी लगाकर धोने की आज्ञा है। कुछ लोग शायद इसकी खिल्ली उड़ादें परन्तु ऐसा करना तन्दुरुस्ती के लिये बहुत ही फायदेमन्द है। अनेक बीमारियां नहीं हो पातीं।

पाखाने से आकर हाथों को और बर्तन को मिट्टी लगाकर अच्छी तरह धो डालना चाहिये। पांवों को भी धोना चाहिये। कुछ लोग पांव नहीं धोते। यह भूल है। पांव धोने से आँखों की ज्योति अच्छी रहती है। फिर किसी वृक्ष की शाखा को तोड़कर दतून करना चाहिये। दतून की मोटाई अपने हाथ की छोटी से छोटी अंगुली के सिरे के बराबर हो। लम्बाई अपनी सुविधा के अनुसार रखी जावे। नीम, बंबूल, करंज, बड़ की जटा, पलाश, खजूर, बांस, महुआ, खैर, आंवला आदि किसी भी ऐसे वृक्ष की शाखा हो जिसकी कूंची अच्छी बनजावे। खजूर और बांस की दतून हमेशा करते रहने से शायद मुखरोग होने की सम्भावना है। दतून से दांतों को बाहर भीतर से साफ करने के बाद, उसकी बीच से दो चीरें करके जीभ का मैल साफ कर डालो। बाद में

अंगुलियों को कण्ठ तक डालकर और अंगूठे से तालू वगैरा को रगड़-कर साफ कर कुल्ले करके मुंह वगैरा धोडालो।

अगर कसरत करनी हो तो करो। कृषकों का दावा है कि "हम तो रात दिन ही कसरत करते हैं, हमें इसकी जरूरत नहीं।" परन्तु नहीं कसरत वही है जो अपने रात दिन के श्रम के अलावा बल संचय की इच्छा से की जाती है। इसलिये अधिक नहीं तो थोड़ी-बहुत कसरत कर लेना ठीक है। कसरत करने वाले को घी दूध आदि पोष्टिक पदार्थ मिलने ही चाहिये। और यदि न मिलें तो कसरत से नुक्सान होगा। ये बातें केवल भ्रमपूर्ण हैं। कसरत के आध घन्टे बाद स्नान करना चाहिये नहीं तो नुक्सान हो जावेगा।

स्नान करने का पानी बिल्कुल साफ होना चाहिये। हमेशा ठंडे पानी से ही नहाना चाहिये। जो लोग ठंडे पानी से नहाते हैं वे प्रायः बीमार नहीं होते। नदी, तालाब, बावड़ी में नहाना अच्छा है। मगर पानी गन्दा और बदबूदार न हो। स्नान खूब अच्छी तरह करना चाहिये। बदन को भिगो-लेने का नाम स्नान नहीं है। हाथों के सहारे धीरे-धीरे अपने सारे शरीर को रगड़-मसलकर बिल्कुल साफ कर देना चाहिये। अंगों के जोड़ जैसे बगलें, रानें आदि की सफाई अच्छी तरह करना चाहिये। गर्दन और कण्ठ को भी रगड़ना चाहिये। इतना रगड़ना चाहिये कि शरीर में गर्मी पैदा हो जावे, और चमड़ा सूर्ख नज़र आने लगे। एक कपड़े को पानी में भिगो-

कर उससे बदन रगड़ने से स्नान अच्छा होता है अगर फालतू वस्त्र नहो तो धोती का एक हिस्सा ही इस काम में लाया जा सकता है। कम से कम दस मिनिट तक अच्छी तरह नहाना चाहिये। जब स्नान से तबीयत प्रसन्न हो जावे तब किसी सूखे वस्त्र से या धोती के ही एक हिस्से को निचोड़कर सारे बदन को अच्छी तरह रगड़कर पोंछ डालना चाहिये। इतने जोर से पोंछा जाय कि चमड़ी लाल होजाय। पोंछने में शरीर का कोई हिस्सा बचने न पावे। इस प्रकार नित्य नियमपूर्वक स्नान करने से तन्दुरुस्ती बहुत ही अच्छी बन जाती है। गर्मी के दिनों में दो बार भी स्नान किया जा सकता है, परन्तु सर्दी के मौसम में नागा भी नहीं करनी चाहिये। जो व्यक्ति ठंड के मौसम में नियमानुसार नित्य शीतल-जल से स्नान करता है वह अत्यन्त नीरोग, दीर्घायु और बलवान होता है। मैं आप से अब पूछना चाहता हूं कि इस बदन की सफाई में आपका क्या खर्च होता है? कुछ भी नहीं। जरा आलस त्याग देने ही से सब काम बन जाता है।

अब हमें कपड़ों की सफाई की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना है। कपड़े जो बदन पर पहिने जाते हैं वे साफ-सुथरे होने चाहिये। फटे भले ही हों परन्तु मैले न हों। उसके लिये एक कपड़ा फालतू रखना चाहिये। यदि एक कुर्ता या मिरजई आप पहिने हैं तो दूसरी धोकर सुखा देनी

चाहिये और उसके मैली होते ही निकालकर दूसरी पहिन लेनी चाहिये। ऐसा करते रहने से बदन के कपड़ों की काफी सफाई रह सकती है। कभी-कभी सोड़ा लगाकर उबाल देना चाहिये और धोकर काम में लाना चाहिये। सब मैल निकल जावेगा। इसी तरह, साफे, पगड़ी, दोहर, दुपट्टा, अंगोछा वगैरा भी साफ करते रहना चाहिये। यही बात स्त्रियों के लिये भी है।

बच्चों के लिये हमें यहां खास तौर से लिखना है। गर्मी में हद से ज्यादा मैले होते हैं। उनके मुंह, हाथ, पेट, छाती, गला, बगलें, पैर वगैरह सभी अवश्य गन्दे रहते हैं। इसमें हम उनका दोष नहीं समझते बल्कि पालकों का दोष कहा जा सकता है। इन्हीं गन्दगियों के कारण बालकों के शरीर में फोड़े-फुन्सी, खाज-खुजली वगैरा होते रहते हैं। गांवों के बालकों के सिर में गंज अथवा फोड़े अवश्य ही हो जाया करते हैं। ९९ फी सैकड़ा बालकों के सिर में फोड़े-फुंसी होते हैं। सफाई की कमी के कारण बच्चों को ये सब तकलीफें उठानी पड़ती हैं। इसलिये माता-पिता अथवा पालकों का यह कर्तव्य है कि बच्चों को नहला-धुलाकर हमेशा साफ रखें। उनके सिर को अच्छी तरह धोकर साफ करते रहना चाहिये। ऐसा करने से बालकों की तन्दुरुस्ती बहुत ही अच्छी रहेगी। उनका शरीर अच्छी तरह बढ़ेगा तथा पुष्ट हो सकेगा। बुद्धि और बल की वृद्धि होकर बच्चे होनहार होंगे। यदि माता-पिता अपने बच्चों की

शारीरिक. सफाई पर आरम्भ ही से ध्यान देंगे तो उनके दिल में सफाई का बीज पड़ जावेगा, और इस प्रकार आगे की पीढ़ियां सफाई पसन्द होंगी।

इसके अतिरिक्त एक सफाई और भी है, जिसे आन्तरिक शुद्धि अर्थात् मन-चित्त की शुद्धि कह सकते हैं। आगे का विषय है, अतएव इस पर हम कुछ भी लिखना ठीक नहीं समझते। पहिले बाहिरी-सफाई की ओर ध्यान देना चाहिये। आन्तरिक शुद्धि ज्ञान से होती है, जो विद्या द्वारा प्राप्त होता है। देहाती भाइयों को पहिले अपने गांव, घर और शरीर की सफाई रखने का विशेष ध्यान रखने की अत्यन्त आवश्यकता है।

खुराक

हवा

मनुष्य की सब खुराकों में से पहिली खुराक हवा है। जिस प्रकार मछली बिना पानी के थोड़ी देर में छटपटाकर मर जाती है उसी तरह बिना हवा के मनुष्य भी थोड़ी ही देर में मर जाता है। अन्न और जल के बिना भी मनुष्य जीवन कठिन है किन्तु हवा सर्व प्रथम है। एक दो मिनिट के लिये नाक और मुंह दबाने से मनुष्य घबरा उठता है और यदि थोड़ी देर और दबा दिया जाय तो काम ही तमाम हो जाता है। इस पर से आप समझ गये होंगे कि मनुष्य के लिये हवा कितनी आवश्यक है।

जो इतनी जरूरी चीज है, उसके लिये सब से पहिले विचार करने की जरूरत है। गांवों में हवा बहुत ही शुद्ध मिलती है। शहरों और कस्बों में यह बात नहीं है। वहां के रहने वाले साफ हवा के लिये तरसा करते हैं। कोसों जंगल में निकल जाने पर भी शुद्ध हवा नसीब नहीं होती। कलकत्ता और बम्बई में कुछ दिन रहकर देखिये। वही बदबूदार मैली हवा सब जगह मिलेगी। हवा की सफाई के लिये या साफ हवा पाने के लिये वहां लोगों को कई प्रयत्न करने पड़ते हैं बिजली के पंखे चलाकर नकली हवा में अपना वक्त गुजारते हैं। कुछ पैसे वाले ही शिमला, आबू वगैरह स्थान में जाकर महीनों रहते हैं। हवा के लिये यह मुसीबत गांवों में नहीं उठानी पड़ती। वहां हमेशा ही शुद्ध हवा मिलती है। ग्रामीण लोगों को अधिक समय जंगलों में, वृक्षों के नीचे, खुले मैदानों में, गुजरता है। यही कारण है कि वे लोग रूखा-सूखा खाकर भी हृष्ट-पुष्ट और मजबूत होते हैं।

अज्ञानता वश कुछ भूलें देहाती लोगों से अवश्य होती रहती हैं। उन्हें समझा देने से वे हटाई जा सकती हैं। सब से पहिले गांव के आस-पास कचरा-कूड़ा, गोबर, आदि न होने देने का प्रबन्ध करना चाहिये, ताकि हवा दूषित न होकर गांव में बहे। यदि गांव के बाहिर कचरा, गोबर, पाखाना वगैरा पड़ा रहता हो तो हवा अपने साथ बदबू के कणों को उड़ाकर सारे गांव पर फैला देगी। इसका गांव के रहने

घरों की सफाई रखने से ही हवा भी साफ रहती है। वर्ना घरों में शुद्ध वायु रह ही नहीं सकता। घर में अधिक सामान रखने से भी हवा खराब होती है, इसलिये सामान अधिक नहीं भरे रहना चाहिये। खास करके सोने-बैठने के घर में तो अधिक सामान रखना ही नहीं चाहिये। आंगन बरामदा और कमरा दोनों वक्त सुबह और शाम को अच्छी तरह बुहार डालना चाहिये। कोने में कचरा न रह जावे, किवाड़ों की ओट में कूड़ा न रहने पावे इस बात का ध्यान झाड़ू लगाते वक्त रखने की जरूरत है। यदि दीवारों को भी दो-दो हाथ ऊँचे से झाड़ दिया जाया करे तो और उत्तम हो। हर महीने मकान की दीवारें और छत भी साफ कर देना चाहिये। मकड़ियों के जाले वगैरा झाड़ते-बुहारते रहना चाहिये। दीवारों को कलई से पोता जाना चाहिये। पर साल में दो बार सफेदी न हो सके तो कम से कम एक बार तो जरूर ही करा देना चाहिये। फर्श को भी फूटने पर मौके ब मौके लीपते रहना चाहिये।

मकानों में खिड़कियाँ, बारियाँ जरूर रखनी चाहिये, जिनके द्वारा साफ हवा घर में आसके। आपके सामने की दीवारों में खिड़कियाँ या दरवाजे नहीं होते उस मकान की हवा कदापि शुद्ध नहीं रह सकती। मान लीजिये कि एक कोठे में सिर्फ दरवाजा ही है और उसमें की किसी भी दीवार में हवा के आने-जाने का कोई साधन, छिद्र या खिड़की

वगैरा नहीं है तो निश्चय मान लीजिये कि उस कमरे की हवा हरगिज साफ नहीं रह सकती। हवा शुद्ध रखने के लिए द्वार के सामने एकाधी खिड़की जरूर ही रहनी चाहिये।

घर में तम्बाकू, सड़ा-गला अन्न, सड़ी-गली हरी शाक-भाजी, फल-फूल, घास-फूस वगैरा हवा खराब करते हैं। कांदे-प्याज, लहसुन वगैरा बदबूदार वस्तुएं रखने अथवा खाने-पीने के कारण सांस द्वारा उसकी बदबू हवा में मिलने से हवा गन्दी होजाती है। मैले चिथड़े, पहिनने के मैले वस्त्र, मैले ओढ़ने बिछौने भी हवा को खराब करते हैं। उठने-बैठने के कमरे में गीले वस्त्रों को सुखाने से भी हवा दूषित होजाती है, विशेषतः वर्षा ऋतु में बदन की सफाई और बदन पर के कपड़ों की सफाई भी घर की हवा साफ रखने के लिये जरूरी है। किसानों को, श्रमजीवियों को दो जोड़ी कपड़े रखने चाहियें। एक तो मेहनत मजदूरी के वक्त पहिने जावें और दूसरे मेहनत से निपटने के बाद।

हवा पांच प्रकार की होती है, किन्तु यहां सब की विवेचना न करके केवल दो प्रकार की हवा का नामोल्लेख करते हैं; एक ऑकसीजन (प्राणवायु) और दूसरी कार्बोनिक एसिड (प्राणनाशक वायु); इन दो की ही प्रधानता है। प्राणवायु अर्थात् मनुष्य जीवन के लिये प्राणी मात्र के लिये आवश्यक, और प्राणनाशक अर्थात् मारकहवा। हम सांस के साथ जिस हवा को अन्दर ले जाते हैं वह प्राणवायु होती

है और जिसे निकालते हैं वह प्राणनाशक वायु होती है। प्राणवायु हमारी मुख्य खुराक है। इसका शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। प्राणवायु सर्वत्र पाई जाती है। ईश्वर ने यह सर्वत्र रखी है। यही दूसरे मैले, बदबूदार पदार्थों को छूकर या उनसे मिलकर दूसरा रूप धारण करती है अर्थात् इसमें कई घातक पदार्थ मिल जाने से यही प्राणनाशक-वायु होजाती है। हमारे सांस द्वारा छोड़ी हुई हवा मारक होती है, इसलिये घरों में से इस हवा के निकल जाने के लिये और साफ हवा के अन्दर आने का काफी प्रबन्ध होना चाहिये। छोटे से मकान में कई मनुष्यों के सोने से, या एक ओढ़ने के वस्त्र में कई मनुष्यों के ओढ़कर सो रहने से हवा बिगड़ जाती है। ऐसे लोग अक्सर बीमार रहा करते हैं; फोड़े-फुन्सी, खाज, खुजली इत्याहि रक्तविकार होने लगते हैं। छोटे-छोटे बच्चे तो इस प्रकार रखे जाने से सूख-सूखकर मर जाया करते हैं। क्योंकि मां-बाप बच्चों को छाती से चिपकाकर और ऊपर से एक ऐसा कपड़ा ओढ़कर सोने में अपना बड़ा ही अहो-भाग्य मानते हैं जिसमें सांस लेने तक को जगह नहीं होती। इस प्रकार बच्चे को शुद्ध हवा नहीं मिलती और वह कोमल बालक बीमार होकर मौत के घाट उतर जाता है।

देहाती लोग यदि शुद्ध हवा के बारे में थोड़ा-बहुत ध्यान देना आरम्भ करदें तो उनका शरीर सुर्ख, मजबूत, नीरोग और दीर्घ-जीवी हो जावेगा। हां, यहां एक बात हम

गांवों के रहने वालों को खास तौर से कहना चाहते हैं कि रात को वृक्षों के नीचे उठना, बैठना और सोना छोड़दें; क्योंकि रात के वक्त वृक्ष, बनस्पति आदि प्राण-नाशक वायु छोड़ते रहते हैं जो अत्यन्त हानि कारक है। हां, दिन के वक्त पेड़ों के नीचे रहना बहुत ही फायदा पहुंचाता है; क्योंकि वे दिन के समय प्राण-वायु छोड़ते और प्राण-नाशक-वायु को नाश करते रहते हैं। हम देखते हैं कि गांव के लोग अक्सर रात को वृक्षों के नीचे बैठकर बातें-चीतें करते हैं, आग से तापा करते हैं, खेतों की रखवाली के लिये भी किसी वृक्ष के नीचे अपने बैठने आदि का साधन बनाकर रात भर बैठे आवाजें किया करते हैं यह ठीक नहीं है। कोई दूसरा उपाय करना चाहिये। जहां तक बन सके रात के समय वृक्षों से दूर रहना चाहिये।

पानी

मनुष्य की खुराकों में, हवा के बाद पानी का नम्बर आता है, इसलिये अब हम पानी के बारे में कुछ समझावेंगे जिस प्रकार प्रकृति ने हमें हवा सब जगह प्रदान की है उसी तरह पानी भी सब जगह मिलने वाली चीज है, परन्तु यह हवा की तरह सुलभ नहीं है। इसके प्राप्त करने में उपाय करने पड़ते हैं। जमीन में गड्ढे खोदकर प्राप्त किया जाता है, नदियों से, तालाबों से भी लाया जाता है। लाने के लिये

और रखने के लिये बर्तनों की भी जरूरत पड़ती है। कहीं पानी बहुतायत से होता है तो कहीं सुर दुर्लभ वस्तु की तरह मिलता है। मारवाड़ आदि रेतीले स्थानों में पानी की बहुत तंगी है। नदी और तालाबों में तो पानी वर्षा खत्म होते न होते सूख जाता है। कुए भी कम गहरे नहीं होते। लेकिन यह हालत सब जगह नहीं है। पानी कोई विशेष कष्ट साध्य खुराक नहीं है।

पानी की सफाई भी मनुष्य के लिये एक आवश्यक विषय है। गन्दा पानी काम में लाने से अनेक बीमारियां, भयंकर बीमारियां हो जाती हैं, इसलिये पानी की स्वच्छता पर बहुत ही ध्यान देने की जरूरत है। आजकल तो पानी को साफ करने की कई तरकीबें काम में लाई जाती हैं। अंग्रेज लोग विधि पूर्वक साफ किये गये पानी को या सोडावाटर को ही अधिकतर काम में लाते हैं, परन्तु जब कि नागरिक लोग भी नवीन पद्धति के अनुसार जल की सफाई करते नहीं पाये जाते तो ग्रामीण भाइयों को उसके लिये कहना व्यर्थ है। केवल अभी इतनी ही जरूरत है कि पानी की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाय। ऐसे कुओं से, जो चारों तरफ से पक्के नहीं बंधे हों, पीने के लिये पानी न लिया जाय। गांव में यदि पक्का कुआ न हो तो पीने का पानी उसमें से लेने के लिये कम से कम एक कुआ तो अवश्य ही पक्का बंधवा लेना चाहिये। उस कुए की सफाई कराते रहना चाहिये। उसमें

पत्ते, घास-फूस, मिट्टी वगैरा कचरा कूड़ा नहीं पड़ने देना चाहिये। कबूतर आदि पक्षियों के रहने के लिये उसकी दीवारों में छेद रखकर पुण्य संचय का कार्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस धर्म कार्य से कुए में पंख, बीट, अंडे, बच्चे, पक्षी, कचरा कूड़ा गिरता रहता है। इसी तरह पीने के लिये पानी प्राप्त करने वाले कुए में सीढ़ियां भूलकर भी नहीं रखनी चाहिये, वर्ना लोग उसमें उतरकर हाथ, पैर, मुंह वगैरा धोवेंगे, थूकेंगे, कफ डालेंगे, स्नान करेंगे और कपड़े धोवेंगे, ऐसे कुओं का पानी या ऐसी बावड़ियों का पानी जिनमें लोग उतरकर हाथ मुंह धोते या स्नान वगैरा करते हों पीने के काम में भूलकर भी नहीं लाना चाहिये।

गांवों के रहने वालों को देखा है कि नदी, नाले, ताल, पोखर, बावली, गड्ढा, जहां कहीं पानी मिल जाता है प्यासे होने पर बिना कुछ आगा पीछा सोचे पी लेते हैं। यह अत्यन्त हानिकारक है। पानी को आंखों से खूब अच्छी तरह देखलो मैला गंदला न हो, कचरा कूड़ा न हो, बदरंग न हो, उसमें बदबू न आती हो, जब खूब अच्छी तरह देख परख चुको तब उसे पीओ। जहां तक बने बावलियों, नदियों और तालों के पानी को पीने के काम में मत लाओ। साफ-सुथरा और मीठा ठंडा पानी अच्छे स्वच्छ बर्तनों में कपड़े से छानकर पीने के लिये रख छोड़ो और प्यास लगने पर उसे ही काम में लाओ।

कुछ लोग कहेंगे कि खेतों में जाकर, जंगलों में साफ पानी प्राप्त करना जरा मुश्किल बात होजाती है और प्यास लगने पर जैसा मिलता है वैसा पीना पड़ता है, परन्तु मैं तो इस बात को कदापि नहीं मानूंगा। जिन्हें अपनी तन्दुरुस्ती की पर्वाह है वे तो अवश्य ही खराब पानी से बच सकते हैं। खराब पानी पीकर मनुष्य कदापि नीरोग नहीं रह सकता। सैकड़ों बीमारियां हमारी खुराकों की गलती से हमें धर दबोचती हैं। पानी को वस्त्र से छानकर पीना बड़ा ही अच्छा है। हमारे शास्त्रकारों ने जल को कपड़े से छानकर पीना अच्छा बताया है। न्हारू जिसे बाला भी कहते हैं पानी पीने ही में अन्दर पहुंच जाता है। इसका कीड़ा पानी में इतना बारीक होता है कि बिना किसी यन्त्र की सहायता के, खाली आँखों से नहीं देखा जासकता। यह पेट में पहुंचकर लगभग दो फीट लम्बा बढ़ जाता है और फिर किसी भी कोमल स्थान से निकलता है। निकलने में बड़ा ही कष्ट पहुंचता है। तात्पर्य यह है कि ऐसे अनेक रोग जन्तु हैं जो पानी के जरिये पेट में पहुंचकर मनुष्य के लिये घातक बन जाते हैं।

पीने का पानी ही साफ होना चाहिये, यों नहीं नहाने के लिये भी गन्दा पानी नहीं होना चाहिये। मैले, बदबूदार पानी में स्नान करने की अपेक्षा तो न करना ही अच्छा है। नदी, तालाब, बावली वगैरह में स्नान करने के पूर्व पानी साफ है या नहीं यह अच्छी तरह देख लेने की जरूरत है। इसी

तरह कपड़े वगैरह भी मैले पानी में नहीं धोने चाहिये। पीने के लिये, नहाने के लिये, और धोने के लिये साफ पानी काम में लाना चाहिये। देहाती लोग अगर पास के किसी गड्ढे या नाले, नदी में पानी होता है तो लोटा लेकर पाखाना नहीं जाते, उन्हीं गड्ढों या नदी-नाले के पानी में गुदा प्रक्षालन करते हैं। इसके लिये वे खराब, गन्दे, मैले पानी का कुछ भी ध्यान नहीं करते। जैसा भी खराब से खराब पानी मिला कि वे उसे काम में लेते हैं यह बहुत ही बुरा है।

घर पर जिन बर्तनों में पानी भरा जाता हो उन्हें अन्दर बाहिर से रोजमर्रह अच्छी तरह धोकर या मांजकर साफ रखना चाहिये। इसी तरह जो कपड़ा पानी छानने के काम में आता हो उसे भी बहुत साफ रखने की जरूरत है। पानी भरने वाला व्यक्ति भी साफ सुथरा हो। उसका शरीर, उसके हाथ और उसके वस्त्र साफ हों, पानी खींचने की रस्सी भी साफ ही हो। कहने का तात्पर्य यह है कि यथासम्भव पानी के लिये बहुत ही सफाई रखनी चाहिये।

अन्न वगैरा

मनुष्य की तीसरी खुराक फल-फूल, कन्द-मूल, अन्न, दूध, घी वगैरह है। इनके बिना पानी पर ही, कई दिनों तक शरीर रह सकता है। अभी तक अधिक से अधिक ९० या १०० दिन तक केवल जल पर बिना अन्न आदि खाये जीवित रहने के प्रमाण मिल चुके हैं। अन्न के अतिरिक्त दूसरे पदार्थों

पर जैसे फल, मेवा, दूध, छाछ वगैरह पर भी सुखपूर्वक जीवन बिताया जा सकता है। शरीर शास्त्र के कई पंडितों का दावा है कि अन्न की अपेक्षा फलाहार, शाकाहार मनुष्य के लिये अत्यन्त लाभदायक है। लेखक का भी यही अनुभव है। परन्तु इस जमाने में अन्न की अपेक्षा फलाहार अत्यन्त महंगा है। इसलिये हम फलों के विषय में थोड़ासा लिखकर आगे अन्न वगैरह पर विचार करेंगे।

फल खाने से शरीर फुर्तीला, बलिष्ठ, नीरोग, और दीर्घजीवी होता है। पेट का कोई भी रोग नहीं होने पाता मास्तिष्क पर अच्छा असर होता है। बुद्धि बढ़ती है। फलों के गुण अलग-अलग हैं, परन्तु यहां इस पर लिखने से व्यर्थ ही आकार बढ़ जावेगा। इतना ध्यान में रखना चाहिये कि फल हमेशा अच्छी चीज है और इनका सेवन यथासम्भव अवश्य करना चाहिये फलों से हानि होने की आशा कम होती है। हां; यदि बहुत खा-लिये जावें तो हानि होना सम्भव है। इसी तरह मेवा भी अच्छी चीज है, परन्तु फलों की अपेक्षा हज्म देर से होते हैं और अधिक खा-लेने से पाचनशक्ति कम हो जाती है। फल और मेवा सड़ा बासा नहीं खाना चाहिये। विशेषतः सड़े बासे फल हानि पहुंचाते हैं जो फल सड़ने के करीब पहुंचने वाले हों उन्हें कदापि नहीं खाना चाहिये।

दूध, घी वगैरा अच्छी वस्तु है। शरीर को पुष्ट करती है। बल, तेज, बुद्धि और आयु-वर्धक है, परन्तु हमारे देहाती

भाई घर में घी, दूध होने पर भी, उसे नहीं खा-पी सकते। खाना-पीना सब जानते हैं परन्तु, दरिद्रता उन्हें नहीं खाने देती। बेचारे दूध या घी बेचते हैं। अपने बच्चों तक को दूध-घी नहीं खाने देते! परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि बच्चों की खास खुराक दूध है। इसके न मिलने से बच्चों की मृत्यु-संख्या बढ़ रही है। आज दूध-घी के अभाव से बच्चे निर्बल और अल्पायु हो गये हैं। दूध घी के न मिलने से आज भारतवासी विविध रोगों के पंजों में जकड़े दिखाई पड़ते हैं। इसलिये ग्रामवासियों को चाहिये कि चाणक्य के-'ऋणं-कृत्वा घृतं पिंवत्।' सिद्धांत के अनुसार दूध और घी अवश्य ही सेवन करना चाहिये क्योंकि दूध-घी खाकर बलवान और नीरोग शरीर दूध-घी की कसर निकाल सकेगा। गांवों में दूध-घी सहज ही प्राप्त हो सकता है, बशर्ते कि दुधारू पशु रखने का अच्छा प्रबन्ध हो। दूध के बारे में यदि स्वतंत्र रूप से लिखा जाय तो एक बड़ी भारी पुस्तक तैयार हो सकती है। यहां अति संक्षिप्त में बतला दिया गया है।

दही और छाछ (मठा) भी बड़ी अच्छी वस्तु है। इनके सेवन करने वाले जल्दी बुढ़ापा नहीं देखते। इनमें बुढ़ापा पैदा करने वाले तत्वों को नष्ट कर देने की शक्ति है। दही न सही, छाछ क्या कुछ कम चीज है। गऊ की छाछ इस मृत्युलोक में अमृत है। वैद्यक ग्रंथों में लिखा है—

"तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्।"

अर्थात्—छाछ इन्द्र के स्वर्गलोक में भी दुर्लभ है। छाछ की प्रशंसा में लिखा है कि 'कैलाश में छाछ न होने से शङ्कर के गले का जहर नष्ट न हो सका। वैकुण्ठ में छाछ होती तो विष्णु का नीला रंग बदलकर गोरा हो जाता। यदि चन्द्रमा को छाछ मिल जाती तो उसकी क्षयी मिट जाती। यदि गणेशजी को छाछ मिलगयी होती तो उनका पेट इतना लटका हुआ न होता। यदि अग्निदेव को छाछ प्राप्त हो जाती तो उनकी जलन मिट जाती और कुबेर को मिल गयी होती तो उनका कोढ़ चला जाता।" इत्यादि इसमें कवि ने अतिशयोक्ति अवश्य की है परन्तु छाछ के गुणों का इससे पता अच्छी तरह चलता है। फ्रांस के एक प्रसिद्ध डाक्टर मि० मेचनीं कत्य ने भी लिखा है कि—छाछ के समान दूसरी उत्तम वस्तु नहीं है।" भाव प्रकाश में लिखा है कि "छाछ पीने वाले को कभी कोई रोग नहीं होने पाता।" हमने छाछ पर अधिक इसलिये लिखा है कि देहाती लोगों को यह सब जगह सहज ही में मिल सकती है। इसलिए इसका सेवन अवश्य किया करें। कहने का तात्पर्य यह है कि छाछ अमृत है। गौ की छाछ सर्वोत्तम है। भैंस बकरी की छाछ में उतने गुण नहीं हैं। मैं अश्त करता हूँ कि ग्रामीण भाई छाछ सेवन से अवश्य लाभ उठावेंगे।

अन्न भी देहाती लोगों को अधिकतर मोटा ही मिलता है। मकई, ज्वार, बाजरा, जौ इत्यादि अन्नों पर अक्सर गुजर

करते हैं। गेहूँ, जौ, चना, वगैरा अन्न अधिक पौष्टिक होते हैं। बच्चों को तो जहां तक हो सके यही अन्न देने चाहिये। गरीबी इसमें भी बाधक होती है। जहां तक हो अन्न अच्छा साफ-सुथरा निर्गंध ओर ताजा ही काम में लाना चाहिये। वर्षा के पड़े और सड़े-गले अन्न से बहुत हानि होती है। जिस पेट के लिए संसार में यह सारे उत्पात किये जारहे हैं, उसे अच्छी तरह अच्छे अन्न से भरने का ध्यान रखना चाहिये। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि करोड़ों देहाती भाई इस स्थिति में भी हैं कि उन्हें दोनों जून भर पेट सूखा अन्न तक नहीं मिलता है। एक समय पेट में कुछ डाल लिया तो दूसरी वक्त के लिए कुछ नहीं रह जाता। बाल-बच्चों को खिला दिया तो माता-पिता भूखे रह जाते हैं। दुर्भिक्ष और दरिद्रता के इस ताण्डवनृत्य से लेखक बेखबर नहीं है और मेरे इस लिखने पर शायद लोग हँसे कि जिन्हें मक्का नहीं मिलता उन्हें गेहूँ और दूध, घी खाने-पीने का उपदेश देना कितनी अनुभव हीनता है। परन्तु नहीं। इस लेख में सुधार की ओर बढ़ने का तरीका बताया गया है। अतएव ऐसा लिखना पड़ा।

हमें अत्यन्त प्रसन्नता है कि मिठाई खोमचे वगैरा का जोर हमारे देहातों में नहीं है। ग्रामीण भाइयों को इनसे बचना चाहिये। यह तन्दुरुस्ती के लिये अत्यन्त भयानक है। शहरों के रहने वालों को मिठाई के और खोमचे के दाने चाटते देखकर अपने को अथवा बुरा—बुरी दशा में नहीं मानना

चाहिये । आप लोग इन नागरिकों से श्रेष्ठ हैं। क्योंकि ये लोग जीभ के बस में होकर अपने को रोगी बना रहें हैं । अपने लिये मौत बुला रहे हैं आप उनसे बचिये । कभी-कभी थोड़ी बहुत मिठाई खालेने में कोई नुक्सान नहीं है । मिठाई, शक्कर जहर है, यह मीठा जहर है । आप इससे बचे हैं । आप बड़े भाग्यशाली हैं, बच्चों के लिये आप बाजारों से हाटों से मिठाइयां मोल लेजाकर उन्हें खिलाते हैं । यह बड़ी भारी भूल है । आप उन्हें अपने हाथों विष न दीजिये । शहरों की मिठाइयां बच्चों के लिये अत्यन्त घातक है । यदि मीठा ही खिलाना हो तो घर ही में कुछ हल्का मीठा बनाकर कभी-कभी बच्चों को खिला देना चाहिये । दूध में थोड़ी शक्कर पिला दिया करें । रोटी के साथ गुड़ या शक्कर दे दिया करें शहद भी बड़ी अच्छी वस्तु है । फल खिलाया करें, शक्कर की तरह तेज मसालों से भी बचना चाहिये । देहाती लोग मिरचें बहुत खाते हैं यह बहुत ही बुरा है । इनसे जहां तक बने बचना ही चाहिये। इस प्रकार अपनी खुराकों पर सदा ध्यान रखने की अत्यन्त आवश्यकता है ।

मुकद्मेबाजी ।

पहिले जमाने में अधिकतर राजा ही स्वयम् फरियाद सुनते और फैसला दिया करते थे । परगनों, जिलों और गांवों-गांवों में आज की तरह कचहरी, कोर्ट और हायकोर्ट नहीं थे । इसका क्या कारण था ? क्या कभी इस विषय पर भी आपने

कभी कुछ विचार किया है। इसका एकमात्र यही कारण था कि, एक तो उस जमाने में इतने झगड़े, फसाद नहीं होते थे और यदि हुए भी तो आपस ही में, पंचायत में निपट लिया करते थे। झगड़ा फिसाद होजाने पर सभी की यही इच्छा रहती थी कि जैसे बने तैसे झगड़ा खत्म होजाय, परन्तु आजकल यह बात नहीं है। उस जमाने में वकील होते ही नहीं थे। अब इन वकीलों की संख्या दिन ब दिन बढ़ती ही दिखाई दे रही है। कोई भी झगड़ा हुआ कि लोग दौड़े हुए वकीलों के पास जाकर उनसे सलाह लेते हैं। वे लोग झूंठ हो या सच, अदालत में लड़ने की आशा बंधा देते हैं इस प्रकार ९० फी सैकड़े मुकद्मे वकीलों की दया से दायर होते हैं। उस वक्त वकील नहीं थे, कचहरियां नहीं थीं, कोर्ट नहीं थे। गांव-गांव में पंचायतें थीं और बड़े मामलों के लिये राजा थे। यही कारण था कि झगड़े वगैराह ज्यादा नहीं बढ़ने पाते थे।

उस जमाने में एक तो झगड़े होते ही नहीं थे और यदि हुए भी तो लोग उसे सुलझाने की ही कोशिश करते थे उलझाना कोई भी नहीं चाहता था। मामला-झगड़ा पंचों के सुपुर्द होता था। पंच लोग भी यही चेष्टा करते थे कि जैसे बने तैसे मामला निपट जावे और दोनों का राजीनामा हो जावे। पंचों से शिकायत करने में स्टाम्प, रसूम, वगैरा का कुछ भी खर्च नहीं होता था। अहलकारों, क्लर्कों और चपरासियों का नामो-

निशान नही था। इसलिये इनकी मुट्ठी गर्म करने का खर्चा भी नहीं होता था। वकील थे ही नहीं, इसलिये इनका भी कुछ खर्चा नहीं होता था। सिर्फ पंचों को इकट्ठा करके अपनी फरियाद सुनाकर न्याय की प्रार्थना करनी पड़ती थी। पंच-लोग अपराधी को बुलाकर उससे पूछते। निरपराध होने पर छोड़ दिया जाता, और यदि अपराधी होता तो उसे उचित दंड दे दिया जाता था।

पंचायती के फैसलों में एक यह विशेषता होती थी कि पंचलोग हमेशा सत्य की खोज में रहते थे। पंच उसी गांव के हुआ करते थे जिसके कि मुद्दई मुद्दायलेह हुआ करते थे। इसका फल यह होता था कि पंचलोग दोनों के स्वभाव, आचरण, रहन-सहन, ढंग, बर्ताव से परिचित होने के कारण सहज ही अपराधी को पहिचान लिया करते थे और सच्चा न्याय मिल जाता था। आजकल अदालतों में यह नहीं होता। न्यायाधीश न जाने कहां से कौन अपरिचित व्यक्ति आजाता है और जो उसे उचित जंचता है या जिसे उसका जी चाहता है, दोषी या निर्दोषी करार देदेता है। यह वैयक्तिक-न्याय है। आजकल भी जब कोई बड़ा भारी मामला आपड़ता है तब कई न्यायाधीशों का एक मण्डल बनाकर फैसला करने की पद्धति वर्तमान है। वह पंचायत-पद्धति कही जा सकती है।

हमारे स्वर्गीय ग्वालियर नरेश श्री. माधवराव महाराज ने कोर्ट कचहरियों के दोषों को देखकर "पंचायत-पद्धति" को अपने राज्य में स्थापित की। कस्बों और शहरों के छोटे-मोटे झगड़े निपटाने के लिये पंचायत बोर्ड कायम किये। स्वर्गीय महाराजा साहिबा को कोर्ट कचहरियों के दोषों का खूब ज्ञान था। वे इनके सुधार में प्रयत्नशील थे। जब उन्हें मालूम पड़ा कि वकील और प्लीडरों के कारण झगड़े बढ़ते हैं तब उन्होंने वकीलों से शपथपत्र लिखाया। अस्तु कहने का तात्पर्य यह है कि अदालतों के इन्द्रजाल में फँसने की अपेक्षा पंचायतों द्वारा झगड़ों का निपटारा कर लेना पहिले जमाने में तो अच्छा था ही परन्तु इस जमाने में भी उपयोगी है।

मुसलमानों के राज्यकाल में पंचायत प्रथा का गला दबोचा गया और एक व्यक्ति के सुपुर्द न्याय का काम कर दिया गया। मुसलमानी जमाने में फारियाद "काजी" के पास की जाती थी और वह अकेला व्यक्ति न्याय या अन्याय करने के लिये स्वतन्त्र था। मनमाना होने लगा। बस यहां से वैयक्तिक-न्याय का श्रीगणेश हुआ। मुसलमानों के जमानों में भी इस प्रकार कोर्ट और कचहरियां नहीं थीं जैसा कि अब हुआ है।

इस युग का नाम "कलियुग" है। "कलि" शब्द का अर्थ कलह, झगड़ा, फसाद, टंटा, लड़ाई वगैरा है। इसलिये झगड़ा और कलह का बढ़ाना, इस युग का धर्म है।

लेकिन "युगधर्म है" ऐसा सोचकर झगड़े वगैरा में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। सब को यह मालूम है कि कलियुग में पाप की वृद्धि होगी। तथापि लोग धर्म को अच्छा समझते हैं, उससे प्रेम करते हैं, ईश्वरस्मरण, रण, दान, तप, याग-यज्ञ, पुण्यकार्य करते ही हैं। मनुष्य मरणधर्मी है यह जानते हुए भी कोई मरना नहीं चाहता। इसी तरह यह कलियुग है ऐसा मानकर झगड़े और कलह करना ठीक नहीं है।

शहरों में मुकद्दमेबाजी खूब होती है। किन्तु अधिकतर दीवानी, फौजदारी कम। परन्तु देहातों में फौजदारी झगड़े अधिक और दीवानी कम होते हैं। मैं देहाती भाइयों को नम्रतापूर्वक बतला देना चाहता हूं कि आपस में खूब हिल-मिलकर रहें। छोटी-छोटी बातों पर क्रुद्ध होकर प्रेम को नष्ट न करें। हिल-मिलकर रहने में जो आनन्द, सुख, शांति और वैभव है, वह कलह, झगड़े और फसाद में नहीं है। गोस्वामीजी ने रामायण में कहा है—

"सुमति तहां सुख सम्पति नाना।
कुमति जहां तहं विपति प्रधाना"॥

दूसरों के छोटे-मोटे अपराधों को, ऐबों-छिद्रों को अपने हृदय में शांति पूर्वक सहन करना सीखो। दिल में उदारता को स्थान दो, ओछापन पास मत आने दो। आप लोग अपने हृदय को विशाल बना लेंगे तो मुकद्दमेबाजी का यह मौका

ही नहीं आवेगा। किसी के दुष्ट व्यवहार को देखकर एक बार उस तरफ से आंख मीचलो और याद करोः—

" जो तोकों कांटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल।
तोकों फूल के फूल हैं, वाकों हैं वे शूल " ॥

अगर आप दूसरों के प्रति भला करेंगे तो आपका भी भला ही होगा। बुरा हरगिज नहीं होगा, और यदि आप किसी का बुरा करेंगे तो आपका भी बुरा ही होगा, भला कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि यह सृष्टि का एक नियम है कि आम से आम और बंबूल से कांटे ही पैदा होवें। बंबूल बोने वाले को उसमें से आम वगैरा फल मिले यह असम्भव है। इसी तरह आम के बोनेवाले को कांटे मिलना असम्भव है। इसलिये आप अपने शत्रुओं के प्रति उदार और सज्जनता का व्यवहार कीजिये। जैसा कि चन्दन अपने काटने वाले औजार को भी अपनी सुगन्धि देता है। इसमें शक नहीं कि ऐसा करने वालों को आरम्भ में बड़ा ही दुःख और कष्ट होगा। परन्तु आगे चलकर महान् सुख और आनन्द मिलेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जहां तक बन पड़े, इस बात का प्रयत्न किया जाय कि गांव में झगड़े-टन्टे और फिसाद ही न हों। जब गांवों में शिक्षा का प्रचार होगा तब यह सहज सम्भव होगा। यदि इतने पर भी झगड़ा-टन्टा हो ही जावे तो आपस में निपटालो और अगर आपस में न निपटे तो पंचों द्वारा फैसला करालो। अदालतों के जाल में मत फँसो।

हमारा ग्रामीण समाज आज मुकद्दमेबाजी के कारण तबाह होगया—मिट्टी में मिल गया। अगर हम यहां अदालतों की माया का पूरा विवरण लिखने बैठें तो बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु स्थानाभाव के कारण यहां सारांश में लिखकर यही बतला देना चाहते हैं कि देहाती लोगों को अदालत में जारा समझना चाहिये। क्योंकि मुकद्दमा चलाने के लिये दोनों पक्ष के आदमियों को सब से पहिले वकील साहब के पास जाकर अपना अपना किस्सा कहना पड़ता है। वकील साहब बात की कोशिश तो करते ही नहीं कि आपस में झगड़ा तमाम हो जाय। वे तो पेट ही इससे पालते हैं। शिकार फँसी देखकर उसे कानून-कायदों के दाव-पेंच समझा कर बड़ा-बड़ा आशा-भरोसा देते हैं, और अपना उल्लू सीधा करते हैं। बचोरा मुवक्किल भी आशा के झोंकों में झूलने लगता है और अपनी मुराद पूरी होने की आशा देखकर कुछ रुपया पेशगी देदेता है, और कुछ मुकद्दमे के निपट जाने पर। दोनों तरफ के वकील दोनों को भरोसा बंधाते हैं। मुकद्दमा झूठा हो या सच्चा हो, जो सच्चे-झूठे दो गवाह पेश करके अथवा नकली कागज बनाकर न्यायाधीश को समझा सकें बस उसी की विजय है। दोनों दल वालों में जो अधिक पैसे वाला होगा उसी की जीत होना बहुत कुछ सम्भव है। इस तरह पैसे की खूब बरबादी होती है। पैसे ही की क्या मुकद्दमेबाजी में सब तरह से बरबादी ही बरबादी है। गांवों के लोगों के

पास पैसा बिल्कुल नहीं होता, गरीब होते हैं। खाने-पहिनने तक को तरसते हैं, परन्तु जब मुकद्दमा चलता है तब मकान जमीन, जेवर, ढोर-डांगर, कुआ, बगिया गिरवी रखकर मुकद्दमा लड़ते हैं। मुकद्दमेबाजी में क्या बरबाद नहीं होता? तन, मन और धन तो नष्ट होते ही हैं, साथ ही में समय की बरबादी भी होती है। वकील, प्लीडर, मुख्तार, क्लर्क, पेशकार, चपरासी वगैरा अमले को धन देना पड़ता है, इतना ही नहीं उनके आगे-पीछे मुँह लपकाये खुशामद और दिलजोई करते फिरना पड़ता है। इतने पर भी वे लोग ग्रामीण लोगों को मूर्ख, गंवार, तुच्छ और नीच समझते हैं। नतीजा क्या होता है वह भी लोगों से छुपा नहीं है। जो चालाक होते हैं, झूठे गवाह और झूठे कागज-पत्र तैयार कर सकते हैं और लोगों की मुट्ठी गर्म कर सकते हैं, बस उन्हीं के पक्ष में फैसला मिल जाता है।

मैं यह नहीं कहता कि सत्य झूठ का निर्णय होता ही नहीं? होता है लेकिन बहुत कम। कभी-कभी जज या मजिस्ट्रेट को यह मालूम होते हुए भी कि अमुक व्यक्ति निर्दोष है, गवाह सुबूत और कानून के पंजे में फँसकर उसे सजा देनी पड़ती है, वह विवश होता है और कभी-कभी यह जानते हुए भी कि अमुक व्यक्ति अपराधी है, गवाह वगैरा सुबूत ठीक नहीं पहुंचने से वह छोड़ दिया जाता है। जज तो केवल दोनों दलों की बातों को और वकील की जिरह कांट-छांटों को

देखकर फैसला दे दिया करता है। ज्यादा कहने की जरूरत नहीं आजकल हरएक देहाती इस बात को बखूबी जानता है।

यदि हम मुकद्दमेबाजी को जुए से तुलना करें तो अनुचित न होगा। मुकद्दमेबाजी का फेर एकसा होता है। मजिस्ट्रेटी से हार हुई तो जज के यहां शायद जीत हो, वहां भी हारे तो हाईकोर्ट की आशा बांधी जाती है। जैसे जुए की हार मीठी होती है वैसेही अदालत की हार भी मीठी होती है। जुए के परिणाम का कुछ पता नहीं रहता कि किधर झुकेगा। वैसेही अदालत के फैसले का भी कुछ भरोसा नहीं होता कि क्या होगा? मुकद्दमे में सच्चे मनुष्य ही लड़ते हैं सो नहीं झूठे भी जी खोलकर लड़ते हैं। इसलिये भूलकर भी मुकद्दमेबाजी नहीं करनी चाहिये। अगर गांवों के लोग मुकद्दमेबाजी से बचने लगें तो बहुत कुछ लाभ होने की सम्भावना है।

अक्सर लोग कहा करते हैं कि आजकल इमानदार पंच नहीं मिलते, न्याय किससे कराया जाय। यह शिकायत किसी हद्द तक बिल्कुल सत्य है किन्तु ढूंढने पर न्याय प्रिय और सच्चे पंच भी मिल जावेंगे। पंच भी दो प्रकार के होते हैं एक "जातीय-पंच" जो अपनी ही जाति के ही समझदार बुजुर्ग और भले आदमी होते हैं और दूसरा "ग्राम्य-पंच" जो गांव के मुखिया माननीय और बुद्धिमान होते हैं। ग्राम्य-पंचों में सब जाति के अर्थात् सब वर्णों के लोग होने चाहिये। वेद की भी ऐसी ही आज्ञा है। इन पंचों से काम नहीं चलता

दिखाई पड़े तो किसी झगड़े विशेष के लिये दोनों ओर से कुछ पंच चुन लिये जाने चाहिये और अपना झगड़ा निपटा लेना चाहिये देहातों में मुकद्दमेबाजी का ऐसा भयानक रोग घुसा है कि उनकी हालत दिन प्रतिदिन खराब ही होती जा रही है। इसलिये मुकद्दमेबाजी न करके पुरानी पद्धति के अनुसार "ग्राम्य पंचायत" कायम करके उसमें अपने झगड़ों को निपटा लेना चाहिये। जैसा कि आज भी प्रत्येक जाति में जातीय झगड़े उठने पर तय कर लिये जाते हैं। देहाती भाइयों को इस जमाने में मुकद्दमेबाजी के दोष बताने की जरूरत नहीं है अब तो जरूरत यह प्रार्थना करने की है कि "मुकद्दमेबाजी" छोड़ देने में ही आपकी भलाई है।

नशेबाजी

भारत में नशेबाजी दिनों दिन घटने के बजाय बढ़ती ही जारही है। आज से कुछ शताब्दि पूर्व भारतवर्ष में नशेबाजी बहुत ही कम थी। इनेगिने एक दो ही नशे जैसे अफीम, भंग और शराब वगैरा उस जमाने में प्रचलित थे। "वाममार्ग" का जब देश में दौर दौरा था तब शराब ने खूब जोर पकड़ा और तब से आजतक उसका जोर बढ़ता ही गया। उस समय में इन नशों की किस्में ज्यादा नहीं थीं। इसके बाद यवनों और अंग्रेजों के साथ बहुत से विदेशी नशे भारत में आ-घुसे। मुसलमानी जमाने में तम्बाकू ने खूब जोर पकड़ा। वह

चिलम और हुक्के की शक्ल में पी जाती थी, खाई और सूंघी भी जाती थी। अंग्रेजों के आने पर तम्बाकू में और भी उन्नति हुई। चुरुट, सिगरेट, बीड़ी, पाइप आदि के रूप में प्रचार हुआ। बीड़ी, सिगरेट पीना अंग्रेजी फेशन में दाखिल होगया। चाय, काफी, कई किस्म की शराब, कोकेन वगैरा अंग्रेजों के साथ यहां आये। इस समय भारत में ज्यादातर नीचे लिखे नशों का प्रचार विशेष रूप से है:—

१. चाय, काफी।

२. तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, सुर्ती, नस्य वगैरा।

३. भंग।

४. गांजा।

५. चण्डू।

६. चरस।

७. अफीम, पोस्त, कसूंबा।

८. शराब, विस्की, ब्रांडी वगैरा।

९. कोकेन।

हम संक्षेप से यहां उन्हीं नशों के विषय में लिखेंगे जिनका प्रचार देहातों में जोरों पर है।

१. चाय—एक ऐसा हल्का नशा है, जो मनुष्य पर अपना प्रभाव तत्काल और तेजी से नहीं दिखाता। शहरों और कस्बों में इसका खूब प्रचार है। आजकल स्वागत सत्कार में यह काम आती है। "टीपार्टी" नाम से जो "चाय-पान"

कराया जाता है यह अंग्रेजों की नकल है। हर्ष है कि देहातों में इसका प्रचार नहीं हो पाया है। गुजरात के देहातों में और थोड़ा बहुत बम्बई इलाके के देहातों में चाय का प्रचार है। काश्मीर के तरफ लोग इसे बहुतायत से सेवन करते हैं। किसी दर्जे तक उनका ऐसा करना ठीक भी है, क्योंकि सर्द प्रांतों में इसके सेवन से गर्मी रहती है। यू. पी., सी. पी, मध्यभारत, राजपूताना के देहातों में लोग इसे काम में बहुत कम लाते हैं। बुखार या सर्दी लग जाने पर बाजार से पैसे-धेले की चाय मोल लेजाकर पी लेते हैं। जिन प्रान्तों में चाय की खेती होती है उधर के देहातों में भी इसका प्रयोग कुछ अधिक ही होता है। लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि शहरों के मुकाबिले में देहातों में चाय का प्रयोग बहुत ही कम है।

चाय नशे की वस्तु है, इसके पीने से शरीर में गर्मी पैदा होती है। नींद नहीं आती, अनिद्रा रोग हो जाता है। हाजमा बिगड़ जाता है वीर्य पर बुरा असर पड़ता है। छोटे-छोटे स्नायु, जो शरीर में यत्रतत्र हैं कमजोर पड़ जाते हैं। इसके पीने से नशा-सा आता है। बुद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यह एक हल्का विष है। इसकी जांच करके विद्वानों ने कहा है कि एक प्याले चाय से २५०।३०० खरगोशों की मृत्यु हो सकती है, मैं अपने देहाती भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि वे इसे मुंह न लगावें। बुखार या जुकाम वगैरा की

हालत में यदि जरूरत पड़े तो दूध में छुहारे उबालकर गरम-गरम खाकर ऊपर से गरम दूध पीलो। अथवा तुलसी के पत्तों की चाय बनाकर पीयो। चाय के बजाये ५।७ पत्ते तुलसी के डाल लो चाय से भी अधिक फायदा होगा।

काफी—चाय से भी तेज पदार्थ है। चाय की तरह ही बनाकर पिया जाता है। वह चाय से भी अधिक हानिकारक है। गांवों में चाय की अपेक्षा इसका कम प्रचार है। कई लोग तो इसका नाम तक भी नहीं जानते। शहरों में भी इसका प्रयोग चाय से कम होता है। इससे दूर ही रहना चाहिये।

तम्बाकू—यह निस्संदेह कहा जासकता है कि देहातों में तम्बाकू का प्रचार बहुत ज्यादा है। जरदा और गुड़ाखू के शक्ल में चिलम और हुक्के में रखकर इसे पीते हैं। बहुत से लोग जर्दे में चूना मिलाकर खाते हैं। कई लोग सूंघते हैं। स्त्रियों को छोड़कर बालक, जवान, बूढ़े सभी तम्बाकू को काम में लाते हैं। कई स्त्रियां भी तम्बाकू व्यवहार में लाती हैं, परन्तु ऐसी स्त्रियों की संख्या मुश्किल से १ फी हजार निकलेगी। हां, इतना जरूर है कि गांवों में छोटे-छोटे बच्चे भी चिलम पीते हैं और मालूम होने पर भी उनके मां-बाप उन्हें कुछ भी नहीं कहते, बल्कि कई भले आदमी तो खुद अपने बच्चों को तम्बाकू पीना सिखाते हैं। गांवों में अभी सिगरेट, चुरट, सुर्ती आदि का प्रचार नहीं हुआ है। हां, पत्तों

की बीड़ियां पहुंच चुकी हैं। तम्बाकू खरीदकर चिलम में पीने की अपेक्षा बीड़ियां मंहगी पड़ती हैं। इसीलिये अभी बीड़ियों का प्रचार गांवों में कम है, कुछ भी हो यह तम्बाकू का व्यसन गांववालों के लिये अत्यन्त हानिकारक है। इस के सैकड़ों अवगुणों के आगे इसमें एक भी गुण दिखाई नहीं पड़ता। देखा-देखी या कुसंगति में फँसकर लोग तम्बाकू का व्यवहार सीख जाते हैं और इस व्यसन में फँस जाने पर इससे निकलना कठिन है। यह पदार्थ आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से तो बुरा है ही, परन्तु धार्मिक दृष्टि से भी हिन्दुओं के लिये छूने लायक भी नहीं है। कार्तिक महात्म्य में एक कथा है " गोलोके गरुडोभिर्युद्ध चैवम् चकारस। गरुड्स्य चतुण्डेन पुच्छकर्णस्तदायतन्॥ रुधिरोऽपि पपातोव्यत्रीणि वस्तूनिचामलन्। कर्येभ्यश्च तमालश्च पुच्छाद्गोभी बभूवहः॥ रुधिरोन्येहदी जाता मोक्षार्थी दूरतस्त्यजेत।

गो लोक में गरुड और गौओं का युद्ध ठन गया। गरुड की चोंचों के प्रहार से गौओं के पूंछ, कान और खून गिरा पूंछ से गोभी, रक्त से मेंहदी और कान से तम्बाकू पैदा हुई। इसी से मिलती-जुलती कथाएं अन्य पुराणों में भी हैं। उनमें अकेली तम्बाकू की ही उत्पत्ति गौ के खून से हुई बताई गई है। भविष्य पुराण में लिखा है।

" प्राप्ते कलियुगे घोरे, सर्वे वर्णा श्रमे नराः।
तमालं सेवित येन, स गच्छे न्नर कार्णये " ॥

अर्थात् जो मनुष्य कलिकाल में तम्बाकू सेवन करेगा वह नर्कगामी होगा। इत्यादि प्रमाण तम्बाकू के विरुद्ध हिन्दू-ग्रंथों में पाये जाते हैं। इन बातों से हिन्दुओं का कर्तव्य है कि वे इसे अग्राह्य समझकर, भूलकर भी काम में न लावें।

अब आर्थिक दृष्टि से देखिये तो आपको पता लगेगा कि हमारे देश का कितना पैसा तम्बाकू पीने-खाने में बर्बाद होता है। भारत की जन-संख्या सन १९२१की मनुष्य गणना के अनुसार ३१ करोड़ ८९ लाख ४२ हजार ४९० है। इसमें पुरुषों की संख्या १६ करोड़ ३९ लाख है और स्त्रियों की संख्या १५ करोड़ ४९ लाख है। स्त्रियां प्रायः तम्बाकू नहीं पीतीं इसलिये पुरुषों की संख्या पर से ही हिसाब लगाना चाहिये। कुछ लोग =) आने ।) आने और १) रु० रोज तक की बीड़ी, चुरट, तम्बाकू फूंक डालते हैं और कई गरीब लोग पैसे धेले रोज की ही पीते हैं। इस तरह अगर फी मनुष्य एक पैसा रोज अर्थात् ॥) महीना तम्बाकू खर्च मान लिया जाय तो ८१ लाख ५० हजार रुपये तम्बाकू में हर महीने हम भारत-वासियों के खर्च हो जाते हैं। इस हिसाब से ९ करोड़ ७८ लाख रुपये तम्बाकू में हर साल बिचारे गरीब भारत का फूंक दिया जाता है वह भारत जिसके आधे बच्चे भरपेट अन्न नहीं पाते उसका १० करोड़ के लगभग रुपया तम्बाकू पीकर अपनी तन्दुरुस्ती खराब करने के लिये खर्च कर दिया जाता है। तम्बाकू का व्यसन दिनों-दिन भारत में इतनी तेजी से

बढ़ रहा है कि यहां की तम्बाकू से जब भूख नहीं लगती तो विदेशों से यहां तम्बाकू आने लगी। सन १९२० ई. में यहां १,४१,९७,८८२) रु. की तम्बाकू आई थी। परन्तु सन १९२५ ई. में २ करोड़ १२ लाख ८४ हजार ५५४ रुपये की तम्बाकू यहां विदेशों से हमारे लिये आई। तम्बाकू के प्रेमियों को इन आंकड़ों पर ध्यान देना चाहिये।

हमारे बच्चे भूखों मरें तो मरें, उन्हें दूध, घी आदि पौष्टिक पदार्थ मिलें या न मिलें, हम लोगों की शिक्षा के लिये द्रव्य की कमी हो तो हो परन्तु भारत का इतना रुपया हर साल तम्बाकू में फूंक दिया जाया करेगा। मैं देहाती भाइयों को नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूं कि अपना नाश अपने हाथों करने के लिये तम्बाकू में पैसा न खर्च कीजिये। उस पैसे को बचाकर अपने और अपने बाल-बच्चों के हित में खर्च कीजिये। शायद आप यह कहेंगे कि अब इसका छूटना कठिन है, लेकिन हम इस बात को नहीं मान सकते। यदि मन में सच्ची नफरत तम्बाकू से करली जावे तो इसी क्षण छूट सकती है।

इसका स्वास्थ्य पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है, इसे भी जरा देख जाइये। आजकल के विज्ञानवेत्ता लोगों ने तम्बाकू की विज्ञान-विधि से परीक्षा की और यह जाहिर किया है कि इसमें एक प्रकार का भयंकर जहर है उस जहर का नाम उन्होंने "निकोटिन" बताया है। आध-सेर तम्बाकू

के विष से ३०० मनुष्यों के प्राण जावेंगे। निकोटिन की एक बूंद कमरे के फर्श पर डाल देने से सारे कमरे की हवा जहरीली हो जावेगी। तम्बाकू के पत्तों का चमड़े पर भी बुरा प्रभाव होता है। आप अपनी खाल पर तम्बाकू के पत्तों का लेप चढ़ाकर अनुभव कर लीजिये। सिगार को खोलकर उसकी तम्बाकू का पेट पर लेप कर देखिये, जी मिचलाने लगेगा। फौरन कै होजायगी। जर्मन-युद्ध के समय कायर सिपाही बीमार बनने की गरज से अपनी बाहों के नीचे तम्बाकू की पत्तियाँ दबाये पकड़े गये थे। अब विचार करने का विषय है कि जिस चीज का ऊपरी लेप इतना भयानक हो, उसका रस या धुआं शरीर पर क्या असर करेगा! तम्बाकू के धुएं में "निकोटिन" जहर के अलावा कारबोनिक ऐसिड् और प्रूसिक एसिड् वगैरा विष भी होते हैं।

उड़नेवाला जहर सांस के जरिये जितना शीघ्र शरीर में असर करता है उतना दूसरे मार्ग से नहीं करता। कारण कि फेफड़े उसे फौरन ही ग्रहण कर लेते हैं। शरीर का सारा रक्त तीन मिनट में शुद्ध होने के लिये फेंफड़ों में आता है, इसलिये फेंफड़ों में तम्बाकू का जहर पहुँचते ही ३ मिनट में सारे शरीर के अन्दरूनी अवयवों को विषाक्त कर देता है तम्बाकू पीने वाला अपनी ही तन्दुरुस्ती बिगाड़ता हो सो नहीं वह उसका धुआँ हवा में छोड़कर दूसरों के स्वास्थ्य को भी खराब कर देता है। लोग जहां-तहां बैठकर बिना सोचे-

समझे तम्बाकू का धुआँ उड़ाने लगते हैं जिससे नहीं पीने वालों के सांस द्वारा धुआँ अन्दर घुस जाता है । उनका सिर घूमने लगता है और जी मचलाने लगता है । तम्बाकू पीने वाले के हाथों से, मुँह से और कपड़ों से बड़ी ही बदबू आती है । तम्बाकू पीने वाले पतियों से उनकी पत्नियां भी घृणा करती हैं । तम्बाकू पीने वाले के सांस से कमरे की हवा तत्काल बदबूदार हो जाती है, बिगड़ जाती है । इस तरह तम्बाकू पीकर अपना, अपने घर का, अपने समाज का और अपने देश का सत्यानाश करना कहां तक ठीक है ! इसे आप ही सोचलें ।

खाने और सूंघने से जब तम्बाकू शरीर के भीतर कोमल चमड़े की झिल्ली को स्पर्श करती है तो उसका शोषण उसी तरह होता है, जैसे कि ऊपरी खाल पर, बल्कि और भी जल्दी। खाने में थूक के साथ पेट में गये हुए जहर का शोषण होता है । तम्बाकू पीने से जो हानि होती है वह सुनिये ।

"तम्बाकू पहिले-पहिल पीने से सिर में चक्कर और जी उमटता है । क्योंकि वह जहर है और शरीर के लिये अयोग्य है । दस्त आते हैं, शरीर पीला पड़ जाता है, आँखें निकल आती हैं, शरीर शिथिल हो जाता है, हृदय का काम मंद हो जाता है । सांस लेने में तकलीफ होने लगती है । खून पतला पड़ जाता है । हाजमा बिगड़ जाता है । दिल और फेफड़े कमजोर हो जाते हैं । इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं । बुद्धि मन्द

हो जाती है। आँखों की पुतलियां फैल जाती हैं। दीमाग को हानि पहुंचाती है। शरीर की नाड़ियां धीरे चलने लगती हैं। खून अच्छी तरह नहीं पैदा होता। गले की कोड़ी बढ़ जाती है और उसमें घाव हो जाता है। दांत मैले होकर जल्दी गिर जाते हैं। कफ बढ़ता है। खांसी और दम हो जाता है। शरीर की बाढ़ रुक जाती है, गले में घाव हो जाता है। क्षयी हो जाती है। जिगर की बीमारी हो जाती है। अजीर्ण हो जाता है। लकवे का रोग हो जाता है। कैंसर रोग बहुत ही असाध्य होता है, हो जाता है। नसों के रोग हो जाते हैं। ये सब बातें विलायत के डॉक्टर बी. डब्ल्यू. रिचार्डसन ने वर्षों तक बड़ी बारीकी से और यन्त्रों की सहायता से परीक्षा करके बताई हैं।"

तम्बाकू सेवन का बुरा असर पीने वालों की सन्तानों पर भी होता है। तम्बाकू पीने, खाने वालों की औलादें निर्बल, निस्तेज, अल्पायु, नाही, क्षयरोग ग्रस्त, मिर्गी, उन्माद, मूर्च्छा आदि रोगयुक्त होती हैं और यदि उनकी औलादों ने भी तम्बाकू सेवन आरम्भ कर दिया तो बस समझ लीजिये "करेले और नीम चढ़े" उनकी औलादें कैसी होंगी? इस तरह धीरे-धीरे वंश बिगड़ते-बिगड़ते एक दिन बर्बाद हो जाता है। डॉक्टरों ने तम्बाकू सेवन करने वाले बच्चों के खून, हड्डी, फेफड़े, दिल, नस वगैरा शारीरिक अवयवों की परीक्षा करके देखा तो उन्होंने भयंकर दशा में पाया। कहने का

तात्पर्य यह है कि तम्बाकू मानव जाति के लिये एक अत्यन्त भयंकर जहर है और यदि मानव-समाज इसी तरह तम्बाकू जैसी सत्यानाशिनी वस्तु का सेवन करता रहा तो वह दिन दूर नहीं है कि उसे एक पतन के भयंकर गड्ढे में गिरकर अपना अस्तित्व खो देना पड़ेगा। अधिक क्या बतावें इस तम्बाकू के पानी की २।३ बूंद से भयंकर से भी भयंकर काला सांप, उसके मुख में डालते ही मर जाता है।

अब यहां पर सहज ही में यह प्रश्न पैदा होसकता है कि "अगर तम्बाकू इतनी भयानक वस्तु है तो इसके सेवन करने वाले सब लोग मरे क्यों नहीं?" यह एक ऐसा प्रश्न है कि हमारी कही हुई सब बातों पर पानी फेर देता है। परन्तु इसका उत्तर यह है कि "शरीर में एक गुण यह है कि वह स्थिति के अनुसार बन जाता और धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाने से तेज से तेज जहर भी धीरे-धीरे बरदाश्त होने लगता है। डाक्टरों का कहना है कि तम्बाकू सेवन करने वाले, तम्बाकू के जहर से ही अकाल मृत्यु पाते हैं। हां, इतना अवश्य है कि तम्बाकू के जहर का पूरा असर होने में वक्त लगता है।

तम्बाकू से छुटकारा पाने का यही एक मात्र उपाय है कि कड़ी छाती करके और हिम्मत बांधकर इसे एकदम ही छोड़ दिया जाय और फिर लाख इच्छा होने पर इसे सेवन न किया जाय। नहीं तो ऐसा होता है कि शुरू-शुरू में कुछ दिनों तक इसके लिये दिल बहुत ही ललचाता है। एकदम

तम्बाकू छोड़ने से कुछ भी हानि नहीं होती। जो लोग कहते हैं कि पेट में दर्द होने लगता है, बायगोला हो जाता है, या दस्त कब्ज होता है, यह केवल सन्देह मात्र है। यदि कुछ हुआ भी तो घबरा नहीं जाना चाहिये। अमृत छोड़ने में घबराने की जरूरत है। जहर तो हर हालत में छोड़ने ही की चीज है। सिर्फ दो चार दिन धीरज रखने से विजय प्राप्त हो जायगी और इस सर्वनाशकारी दुर्व्यसन के अत्याचार से छुट्टी मिल जावेगी। एकदम तम्बाकू छोड़ देने से कुछ भी हानि नहीं होती। जेल में पहुंचते ही कैदियों से छुड़ादी जाती है। उन्हें कुछ भी हानि नहीं होती, बल्कि समयान्तर में लाभ ही होता है।

इसके लिये सरकार को भी कुछ कानून बनाने चाहिये। तम्बाकू पर भारी से भारी टेक्स रखना चाहिये। विलायत में १८ वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति को तम्बाकू काम में लाना कानूनन् मना है। शायद ग्वालियर राज्य में भी, १६ वर्ष से कम उम्र के बच्चे को तम्बाकू पीना कानूनन् मना है। खिलची-पुर राज्य जो मध्यभारत में है उसके महाराजा रिपुदमनसिंहजी महाराज ने अपने राज्य में जर्दाखाना कानूनन् रोक दिया है। आपकी प्रजा जर्दा बहुत खाया करती थी। इसी तरह यदि अन्य सरकारें तम्बाकू जैसे भयप्रद और सर्वनाशी व्यसन की रोक के लिये कानून बनादें, तो मानव समाज का बहुत हित हो सकता है। आशा है राजा और प्रजा दोनों मेरी प्रार्थना

पर विचार करेंगे। ग्रामीण भाइयों से अनुरोध पूर्वक निवेदन है कि—यदि तम्बाकू से अपनी रक्षा करेंगे तो आप बहुत ही शीघ्र अपनी उन्नति कर लेंगे।

भंग—यद्यपि भंग का प्रचार गांवों में अधिक नहीं है तो भी हम अपने देहाती भाइयों से इतना कहदेना चाहते हैं कि, यह कोई अच्छी वस्तु नहीं है। यह नशा है—नशे के जो परिणाम होने चाहिये वे इसमें भी हैं। यह बुद्धि को भ्रष्ट करती, तथा खून में विकार उत्पन्न करती है। लोगों का कहना है कि भांग खाने से भूख बहुत लगती है, किन्तु यह बात झूंठ है। भंग के नशे में जो भूख लगती है वह बनावटी होती है। अधिक खालेने पर पेट को ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है और आगे चलकर मंदाग्नि होजाती है। भंग का नशा अक्सर सभ्य या बड़े कहलानेवाले करते हैं। उन्हें नशा करते देखकर आप न ललचावें और उस नशे को अच्छा न मान बैठें। किसी बड़े कहलानेवाले के सभी काम अच्छे नहीं हुआ करते हैं। नशा तो प्रत्येक दशा में भयंकर और बुरा है। भला जिस वस्तु के सेवन से बुद्धि भ्रष्ट होजाती हो, ज्ञान का लोप होता हो उसे कौन समझदार अच्छा कह सकता है? नशे को अच्छा बताना नशेबाजों की ही बात समझिये। भंग की बड़ाई भी उसके प्रेमियों के मुख से बहुत सुनी जाती है, परन्तु वे अपने दोष छुपाने के लिये मिथ्या प्रशंसा के पुल

बांधा करते हैं। देहाती भाइयों को इस नशे से दूर रहना चाहिये।

गांजा—देहातों में, यद्यपि गांजे का प्रचार नहीं है, तथापि थोड़ा बहुत अवश्य है। गांवों में गांजे का प्रचार साधु और फकीरों के द्वारा हुआ है। कभी कोई साधु, फकीर गांव में आकर कुछ दिन टिका कि दोचार, दस-बीस गांजे के प्रेमी तैयार हुए। लोग समझते हैं कि, गांजे को जब साधु-महात्मा ही पीते हैं तो हमारे पीने में क्या हानि है? इसके अलावा साधु, फकीर भी गांजे की तारीफ सुना-सुनाकर कई लोगों को अपना मुरीद बना लेते हैं। इससे उनको लाभ यह होता है कि, जहां-तहां उन्हें भक्तों द्वारा मुफ्त में दमें लगाने को मिल जाया करती हैं। वे बिचारे भोले-भाले ग्रामीण लोगों को बहका देते हैं कि गांजा, भांग पीने से भजन-पूजन में अच्छा मन लगता है। ईश्वर से लौ लग जाती है। इत्यादि, परन्तु मैं देहाती भाइयों को इस विषय में सावधान कर देना चाहता हूं कि इन धूर्तों की चिकनी-चुपड़ी मीठी-मीठी बातों में हरगिज नहीं आना चाहिये और मैं आपको यह एक ध्रुव, अटल और सत्य सिद्धांत बनाये देता हूं कि, जो साधु, फकीर किसी भी तरह का नशा करता हो उसे महात्मा अथवा सच्चा साधु भूलकर भी मत समझो। नशा करनेवाला व्यक्ति कदापि त्रिकाल में भी साधु, महात्मा अथवा तपस्वी हो ही नहीं सकता। यह उसी तरह सत्य है जिस तरह कि २+२=४ का

होना सत्य है। गांजा बहुत बुरी चीज है। इससे बहुत बचना चाहिये। शरीर को सुखा देता है, पागलपन पैदा करता है। पागलखाने में ऐसे ही आदमियों की संख्या अधिक है जो गांजा, सुलफा, चरस वगैरा पीकर पागल हुए हैं। गांजा पीनेवाला शक्तिहीन, वीर्यहीन और तेजोहीन होजाता है। खांसी और दमें का रोग भी पल्ले बंध जाता है। इसलिये इस नाशकारी मादक द्रव्य को भूलकर भी काम में मतलाओ।

चण्डू, चरस और मदक—इन तीनों नशों का देहातों में प्रचार नाममात्र को भी नहीं पाया जाता। ये बहुत ही बुरे नशे हैं, भगवान हमारे भोले भाइयों को बचावें यही प्रार्थना है।

अफीम, पोस्त कसूंबा—अफीम को तो सब कोई जानता है, इसे जवान लोग अक्सर कम खाते हैं। बूढ़े आदमी अफीम खाया करते हैं और बच्चों को उनकी माताएं अफीम देती हैं। जो माताएं बच्चों को अफीम खिलाती हैं, वे भूल करती हैं। माताएं बच्चों को अक्सर इसलिये अफीम देती हैं कि वे बेसुध पड़े रहें और वे काम करती रहें या गप्पे छांटती रहें। इस अफीम के कारण कई बच्चों की मृत्यु हो जाती है। बच्चों को अफीम देना बहुत ही बुरा है। जो माँ-बाप अपने बालक को अफीम देते हैं वे उसके माता-पिता नहीं बल्कि शत्रु कहने चाहिये। इस बचपन में अफीम देने का असर इतना खराब होता है कि उसकी जिन्दगी ही बिगड़ जाती है। मस्तिष्क पर बुरा असर पड़ता है। ज्ञान-तन्तु निर्बल होकर बालक

बुद्धि हीन हो जाता है। पढ़ाने-लिखाने पर भी उसे ज्ञान नहीं होता। अफीम मल रोधक—काबिज और गफलत पैदा करने वाली है। पहिले चीन देश में अफीम का प्रचार खूब था, यहां तक कि लोग अपनी दीवारें भी अफीम से ही पुताया करते थे। आज चीन सम्भल गया है, उसने अफीम जैसी सत्यानाशी वस्तु को त्याग दिया और अपनी उन्नति में लगा हुआ है। अफीम एक बार शुरू हुई कि फिर उसका छूटना कठिन हो जाता है, इसलिये इसे मुँह लगाना ही बुरा है। दवा के रूप में भी इसे काम में नहीं लाना चाहिये। अक्सर दस्तों की बीमारी में उन्हें बंद करने की गरज से लोग अफीम खाने लगाते हैं, फिर उससे पिंड छुटाना कठिन हो जाता है! इसलिये अफीम को किसी भी रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिये।

पोस्त और कसूंबा राजपूताने में अधिक प्रचलित है। ये भी अफीम से ही बनते हैं। तरल पदार्थ होते हैं। ऐसे अफीम के डोड़े जिनसे अफीम नहीं निकाली गई हो, पानी में भिगो-कर मसल छानकर पीते हैं। इनका भी नशा तेज होता है। राजपूताने के राजपूत लोग पोस्त और कसूंबा ज्यादा पीते हैं। ये हानिकारक हैं।

शराब—शराब एक अत्यंत भयंकर और बहुत ही बुरा नशा है। यह प्राणिमात्र के लिये विष है। इसका यह प्रमाण

जाती है। शराबी की पाचन क्रिया में बाधा पहुंचाने के कारण शरीर के समग्र अवयवों में चरबी जमा हो जाती है, जिससे शरीर को हानि पहुंचती है। शराबी का हृदय बड़ी तेजी से धड़कता है, नाड़ी अव्यवस्थित और बहुत कमजोर चलती है। हृदय को बहुत हानि पहुंचाती है। शराबी के भीतरी अवयवों में सूजन आजाती है। शराबी के चहरे पर लाल धब्बे हो जाते हैं। नाक फूल जाता है और उस पर गहरी लाली छा जाती है। मस्तिष्क एक अत्यंत कोमल पदार्थ है किन्तु शराबी का मस्तिष्क अत्यन्त कठोर हो जाता है। वलायत के एक डॉक्टर का कहना है कि " एक पोस्ट मार्टम में लाश के दीमाग को चीरा तो उसमें से शराब की बदबू आरही थी जिस समय उसे जली हुई दियासलाई बताई गई वह भक से जल उठा। कभी कभी शराब की मस्तिष्क में इतनी अधिक मात्रा पाई जाती है कि उससे शराब निकाली जासकती है। लोको मोटर एटेक्सिया (*Loco Motor Ataxia*) नामक असाध्य बीमारी अकसर शराबियों को ही होती है। शराब के अधिक अभ्यासी के हाथ पैर काँपने लगते हैं। शराब पीने से आशायश का रंग बिल्कुल सुर्ख़ हो जाता है और उस पर फुन्सी फोड़े से निकल आते हैं। शराबी का यकृत सिकुड़कर कर्रा हो जाता है। उस पर दाने उठ जाते हैं, वह निकम्मा हो जाता है। लोग शक्ति बढ़ाने की गरज से शराब पीते हैं। लेकिन शराब से शक्ति घटती है। मांस पेशियां चरबी की शक्ल में बदल जाती हैं। शरीर की

गर्मी घट जाती है इन्द्रियों को हानि पहुंचती है। शराब से उम्र घटती है। उन्माद, जलोदर, क्षय या गलपन आदि रोग हो जाते हैं।

देहातों में तम्बाकू की तरह शराब का भी खूब प्रचार है। फी सैकड़ा ५० मनुष्य शराब पीते हैं। ब्राह्मण, वैश्यों को छोड़कर प्रायः सभी लोग शराब पीते हैं। हमारे देहातों के करोड़ों रुपये कड़ी मेहनत की कमाई खरे पसीने का पैसा कलाल के घर पहुंच जाता है इतना होने पर भी कुछ लाभ होता तो भी ठीक होता, लेकिन सिवाय हानि के कुछ पल्ले नहीं पड़ता। यहां हरसाल करोड़ों रुपये की शराब विलायत से भी आने लगी है, जिससे गांव के लोग न सही शहरों के सभ्य कहलाने वाले लोग काम में लाते हैं। सन १९२७ ई. में यहां भारत में ३ करोड़ ५२ लाख ८५ हजार ८३८ रु. की शराब विदेशों से आई थी। सारांश कि, शराब का व्यसन दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। देहाती लोगों को इस राक्षसी से हमेशा बचना चाहिये। एक यहां नक्शा देते हैं जिससे शराब के परिणाम का आपको पता लग जायेगा।

१० शराब न पीनेवाले कुटुम्बों के ६१ बालकों में से।

मृत्यु	५
कम्परोग	२

मानसिक निर्बलता	....	....	....	२
शारीरिक ,,	....	....	....	२
स्वस्थ ,,	....	....	....	५०

१० शराबी कुटुम्बों के ४७ बालकों में से.

मृत्यु	....	....	....	२५
कम्परोग	....	....	....	१
मानसिक निर्बलता	....	....	....	६
शारीरिक ,,	....	....	....	५
स्वास्थ ,,	....	....	....	१०

इस पर से समझा जा सकता है कि शराबी की औलादों पर माता-पिता के शराबी होने का कैसा भयानक परिणाम होता है। अब यहां एक दूसरा नक्शा देते हैं जिससे शराब की खराबियां और भी समझ में आजावेंगी।

पिता जन्म १८३०—वंश परम्परा में पागल या शराबी कोई नहीं था, बचपन से खूब शराब पीने लगा।

पागलखाना।

भर्ती हुआ.	छूटा.
१२-६-१८७१	११-७-१८७६
१९-१-१८९२	८-२-१८९२

माता—वंश परम्परा में शराबी या पागल कोई नहीं था।

पुत्री जन्म १८५९— पागलखाने में भर्ती हुई। २४-१०-७४ छूटकर फिर पागलखाने में गई और छूटी।

पुत्री जन्म १८६०—पागलखाने में ६-१०-७४ को गई छूटकर फिर कई बार पागलखाने में गई और छूटी।

पुत्र जन्म १८६०—ता. २६–६–७७ को पागलखाने गया, छूटा और दुबारा पागलखाने गया और फिर छूटा।

पुत्री जन्म १८६७—पागलखाने २-१-९२ में भर्ती होकर छूटी और फिर एक बार पागलखाने गई और छूटी।

पुत्र जन्म १८७२—पागलखाने में २४-११-८८ में पहुंचा और ४-९-१९०२ में क्षय रोग से मर गया।

पुत्री, पुत्री, पुत्री—कोई पागलखाने नहीं गई।

इस नक्शे पर से यह स्पष्ट होता है कि शराबी की सन्तानें पागल होती हैं। शराब का सन्तानों पर कितना बुरा परिणाम होता है, यह सहज ही में समझा जा सकता है। शराबी की औलाद मृगी रोग में भी कष्ट पाती हुई अक्सर देखी गई है। मि. माराटिन ने १५० ऐसे पागल खानदानों के इतिहास को खोजा है। जिन्हें मृगी की बीमारी थी उन्होंने अपने अनुसंधान से यह साबित किया कि उनमें से ८३ के माता–पिता पूर्वज शराबी थे। कभी कभी देखा जाता है कि शराबियों का स्वास्थ्य उतना बिगड़ा हुआ नहीं दिखाई देता

जितना कि होना चाहिये, किन्तु उनकी संतानों को देखो उस शराबखोरी का प्रभाव उनकी संतानों पर साफ दिखाई पड़ता है।

शराब से शरीर की बरबादी तो होती ही है परन्तु साथ ही साथ धन और धर्म भी बरबाद हो जाता है। अब वह यूरोप पक्का शराबी था इससे नफरत करने लगा है। रूस की सरकार ने अपने देश में शराब का बनाना और बेचना बंद कर दिया है। फ्रांस में युद्ध शुरू होने पर शराब की रोक थाम हुई। अब वहां कोई भी शराब नहीं पीता। अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट में शराब का बनाना और बेचना—खरीदना रोका जाचुका है। सिर्फ दवा के लिये प्रयोग की जाती है। सम्राट् पंचम जार्ज महोदय ने भी शराब त्याग दी है।

परन्तु इधर भारत में, कंगाल भारत में धर्म की डींग मारने वाले देश में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों की शराब पेट में उतार दी जाती है। ग्रामीण भाई शराब से बहुत प्रेम करते हैं। त्योहारों पर, उत्सवों पर, पंचायतों में, जाति-भोज में शराब का दौर दौरा रहता है। प्यारे भाइयों अगर इससे आपने अपना पिंड नहीं छुड़ाया तो याद रखो एक न एक दिन यह आपका नाम इस संसार से मिटा देगी अब भी सम्भल जाने का वक्त है।

क्या सरकार दूसरे देशों की तरह इसका बनना और बिकना भारत में रोकने की कृपा करेगी? केवल शराब पर टैक्स बढ़ा देने से काम नहीं चलेगा। इसके एकदम रोक थाम

की जरूरत है। देखें कौन सरकार इस उत्तम और लाभदायक कार्य को प्रथम करके दिखाने का पवित्र कार्य करती है। अपनी प्रजा को जिस पदार्थ से हानि पहुंचती हो और वह भी सभी तरह आर्थिक धार्मिक नैतिक और शारीरिक उसे अपने राज्य में रोक देना प्रत्येक प्रजा शुभचिन्तक राजा का फर्ज है। राजा से इस प्रकार निवेदन करने का कारण यह है कि आशिक्षित प्रजा अपना भला बुरा अच्छी तरह अभी नहीं समझती है। जिस देश में पढ़े लिखे की संख्या प्रतिशत ९ हों और ९०–९१ फी सैकड़ा अपढ़ मूर्ख अथवा आशिक्षित हों उनके शराबी हो जाने से देश की दशा क्या होगी! इस पर ध्यान देने की जरूरत है। एक तो वैसे ही बुद्धि का अभाव और दूसरे शराब पीकर बुद्धि की बरबादी कैसी भयंकरता है? मेरे देहाती भाई इसपर खूब ध्यान से विचार करें।

कोकेन—यह एक भयानक से भी भयानक नशा है। बहुमूल्य है। इसका लगभग मूल्य ६०) ७०) रुपया तोला होता है। यह विदेशों से आती है, सफेद रंग की चीज होती है। सरकार ने इसके रोक की बहुत सख्ती कर रखी है इसीलिये इसका प्रचार बहुत कम है। बड़े शहरों में यह छुप छुप कर बेची खरीदी जाती है। तम्बोलियों की दुकानों पर अक्सर चुपचाप पान में मिल जाया करती है। उस पान की कीमत १) २) ५) रु. अथवा कोकिन जितना मिकदार में हो उसी के अनुसार मूल्य होता है। यह बड़ा ही उत्तेजक नशा

है। शहरों में रहने वाले मुर्दे कमजोर और नपुंसक धनी लोग कोकिन खाते है। इसका जो नतीजा होता हैं वह भी सुन लीजिये, दिल दिमाग और शरीर कमजोर हो जाता है। बदन में रक्त नहीं रहता, चमड़ा सफेद या पीला हो जाता है। थोड़े ही वक्त में कोई भयानक रोग हो जाता है जिससे उस कोकिन-प्रेमी के जीवन का अन्त हो जाता है। यह नशा शराब से भी तेज है। डाक्टर लोग कोकिन के पानी से अंग को निर्जीव करके वहां शस्त्र चिकित्सा करते हैं यह इतनी तेज वस्तु है।

हमारे पाठक इस विवेचन पर से नशेबाजी के दुर्गुणों को समझ गये होंगे आशा है नशों से बचते रहेंगे।

ग्राम्य-वेषभूषा

भारत का पहिनावा आजकल क्या है यह कुछ भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। यहां सभी प्रकार का पहिनावा देखने में आता है। यदि यह कह दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी कि भारतवर्ष सब पृथ्वी के पहिनावे की प्रदर्शिनी है। किसी बड़े शहर में जाकर देखिये आपको हमारे कहने की सच झूंठ का पता लग जावेगा। किसी समय भारतवासियों को अपने पहिनावे का बड़ा ही गर्व था। भारतीयों का पहिनावा आज से एक हजार वर्ष पूर्व बड़ा ही सभ्य पहिनावा

गिना जाता था। जिस समय दूसरे देशों के लोग नंगे, बिना वस्त्रों के रहते थे अथवा वृक्ष के पत्तों से अपना शरीर ढांकते थे, उस जमाने में भारतवासी रेशम और जरी का बहुमूल्य वस्त्र पहिनते थे। यहां का पहिनावा इतना अच्छा और सुविधाजनक था कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व विदेशों के साधु, फकीर और पीर पैगम्बर तक इसे ही पहिनते थे। आपने यदि कहीं अंग्रेजों के देवदूत हजरत ईसा का चित्र देखा होगा तो उसमें आपने उन्हें भारतीय ढंग के कपड़े पहिने पाया होगा। इसी प्रकार दूसरे देशों के साधु, फकीरों का प्राचीन पहिनावा भी भारतीय ढंग का ही पाया जाता है।

पहिले जमाने में लोग धोती, दुपट्टा, कुरता या मिरजई, और पगड़ी या साफा पहिना करते थे। पैरों में जूतियां या काठ की खड़ाऊं धारण करते थे। स्त्रियां घाघरा, लुगड़ी और आंगी (चोली) पहिना करती थीं। पुरुषवर्ग कभी कभी लवादा, जिसे वर्तमान समय का ओव्हरकोट (Over coat) भी कहा जाता है, पहिना करते थे। इन वस्त्रों का नाम वेदों में मिलता है। प्राचीन समय में लोग अधिक कपड़े नहीं पहिनते थे। अक्सर धोती बांधे हुए नंगे बदन रहा करते थे। उनका सिद्धांत था कि रात दिन शरीर को कपड़ों में लपेटे रहने से शरीर निर्बल, रोगी और अल्पायु बन जाता है। यह बात है भी बिल्कुल सही। मनुष्य को चाहिये कि जहां तक बन सके कम कपड़े ही काम में लावें।

इस जमाने में भारत का पहिनावा कौनसा है, यह कह देना असम्भव है, क्योंकि भारत ने जब से स्वाभिमान और स्वतंत्रता को छोड़ गुलामी को अपनाया है तभी से भारतीयता उनके हृदय से छू होगई है, भारतीय सन्तान, अपनी पोशाकों को छोड़कर दूसरे देशों की पोशाकों से प्रेम करने लगी है। बहुरूपियों की तरह स्वांग भरती दिखाई पड़ती है। जब यहां मुसलमानों का दौरदौरा हुआ तब भारत सन्तान ने अपनी पोशाक छोड़कर मुसलमानी पहिनावा पहिनना आरम्भ कर दिया। धोती की जगह पाजामा, पगड़ी की जगह साफा लुंगी, मिरजई, अंगरखी, कुरते वगैरह की जगह जामा, अचकन, शेरबानी वगैरह पहिनने लगे। दुपट्टे के स्थान पर रूमाल काम में लाने लगे। यहां तक इसका प्रचार हुआ कि हिन्दुओं के विवाह शादी तक में दूल्हे को पाजामा और जामा वगैरह पहिनाया जाता है। इसके बाद यहां अंग्रेजों का आगमन हुआ। फिर क्या था? नक्काल भारतीयों ने उनका पहिनावा अपना लिया। कमीज, वेस्ट कोट, कोट हाफकोट, लौट कॉलर का कोट, हंटिंग कोट, ओव्हर कोट, कॉलर, नेकटाई, बो, मफलर, बूट, लांगबूट, जुर्राब, बिरजिस, पतलून, बेल्ट, गेलिस, क्रिस्ती कैप या हैट वगैरह पहिनना आरम्भ कर दिया। आगे की ईश्वर जाने! हमें कौनसा पहिनावा पहिनना पड़ेगा।

भारतीय, अपने देश में रहकर ही अपनी पोशाक को गिरगट के रंग की तरह बदल रहे हैं और दूसरे देशों के लोग

अपने वेष को हजारों कोस दूर जाकर भी नहीं बदलते। उदाहरणार्थ—अंग्रेजों को देखिये। करोड़ों भारतवासियों में लाखों की तादाद में रहते हैं और यहां का गर्म जल–वायु उनकी पोषाक के प्रतिकूल है, फिर भी वे अपने देश की पोशाक नहीं त्यागते। अपनी जाति और अपने राष्ट्र का वेष त्यागना वे अपना और अपने देश का अपमान समझते हैं। और इधर भारतवासियों को देखिये, वे कुछ भी आगा पीछा न सोचते हुए चटपट दूसरों का पहिनावा अपने शरीर पर लाद लेते हैं।

हम यहां यह बतला देना चाहते हैं कि प्रत्येक देश का पहिनावा, रहन-सहन और रीति-रिवाज देश के जल-वायु और समय के अनुकूल होता है उदाहरणार्थ अंग्रेजों का पहनावा ठंडे देश का है। वे, मौजे, पतलून, बूट, कमीज, वेस्ट कोट, कोट वगैरा इसीलिये पहिनते हैं कि अपने शरीर की रक्षा ठंड से कर सकें। नेकटाई उनके धर्म का "धर्म चिन्ह" है। नेकटाई और कॉलर के लिये खुले गले का कोट पहिनना पड़ता है, परन्तु यदि भारतीय हिन्दू-मुसलमानों से नेकटाई आदि पहिनने का कारण पूछा जावे तो उनके पास क्या उत्तर है? 'पाजामा' एक ऐसा असुविधा जनक पहिनावा है कि भारत जैसे देश में वह उपयोगी नहीं हो सकता। हिन्दू लोग, जो नित्य स्नान करना अपना धर्म समझते हैं यदि पाजामा पहिनने लगजावें तो स्नान के समय बड़ी ही असुविधा हो।

पाजामा पहिनकर स्नान करने में कितनी असुविधा और तकलीफ होती है, यह जानना हो तो एक दिन पाजामा पहिन कर स्नान करके अनुभव कर लीजिये। इसी तरह पतलून या ब्रिजिस भी असुविधा का पहिनावा है। पतलून अथवा ब्रिजिस पहिनकर तो जमीन पर बैठना तक दुश्वार हो जाता है। नेकटाई, कालर, बो और मफलर लगाकर जनेऊ पहिनने वाले द्विजों को पेशाब करने के समय जब जनेऊ कान पर लपेटनी होती है तब बड़ी ही असुविधा होती है। कहने का सारांश यह है कि भारत के लिये भारतीय पोशाक ही लाभ-दायक और स्वास्थ्यप्रद हो सकती है। देखा-देखी स्वांग बनाने में सिवाय हानि के और कुछ लाभ नहीं होता। देशी पहि-नावा सब तरह अच्छा होता है। तन, मन और धन तीनों की रक्षा के लिये हमें भारत का पहिनावा पहिनना चाहिये।

हमें इस बात का अपार हर्ष है कि हमारे देहातों में यह नकालपना अभी नहीं पहुँचा है। फेशन के भूत ने अभी उन पर अपना दौरा नहीं किया है। कोई भी ऐसा देहाती मनुष्य नहीं मिलेगा जो कोट, नेकटाई व सूट बूट से प्रेम करता हो। हां, कुछ लोग पाजामा पहिनते हैं। अधिकांश पंजाब में और कुछ-कुछ गुजरात में देहाती लोग पाजामे पहिनते हैं। यू. पी., बंगाल, मध्यभारत, सी. पी., राजपूताना और दक्षिणभारत में देहाती लोग पाजामा नहीं पहिनते। यहां तक कि इन प्रान्तों के मुसलमान भी ज्यादातर धोती ही

पहिनते हैं। पाजामा नहीं पहिनते। देहाती लोग वस्त्र भी बहुत कम पहिनते हैं और अपना प्राचीन पहिनावा अपनाये हुए हैं। यह कुछ कम हर्ष की बात नहीं है।

देशी पहिनावे का हम ऊपर जिक्र कर आये हैं। साफा, पगड़ी, या टोपी, कुरता, कमीज, बंडी, अंगरखी या मिरजई, धोती, डुपट्टा और जूते ये चीजें भारतीय पोशाक हैं। सदरी, फितोई, कोट वगैरह भी देशी पोशाकें हैं। देहातों में जो कुछ भी काम-धंधा होता है वह मेहनत मजदूरी से अधिक सम्बन्ध रखता है। इसलिये देहाती लोगों को मोटा पहिनना और मोटा खाना अपना परम सौभाग्य समझना चाहिये। किसी को मलमल जैसे बारीक वस्त्र और मिठाइयां खाते देखकर अपने को उससे कम या हीन मत समझो। मलमल पहिनना और मिठाई खाना अपने हाथों अपनी तन्दुरुस्ती को नष्ट करना है। इसलिये स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने की इच्छा से मोटा खाना और मोटा पहिनना अपना अहोभाग्य समझो। हम देखते हैं कि हमारे देहाती भाई खादी या दूसरा कोई मोटा वस्त्र पहिनते हैं। हां अब कहीं-कहीं मलमल के साफे और महीन धोतियां काम में आने लगी हैं। जिन ग्रामीण भाइयों के पास पैसा होता है अक्सर वे ही महीन वस्त्र पहिनते पाये जाते हैं, यह उनकी भूल है। ग्रामों में स्वावलम्बन होना जरूरी बात है। सभी वस्तुओं को गांवों में उत्पन्न किया जाय। खुद काम में लावें और फिर कस्बों और शहरों के बाजारों

को गांव की बनी वस्तुओं से भरदें। खास करके भोजन और वस्त्र की उत्पत्ति तो अपने-अपने गांवों ही में करनी चाहिये। जीवन की इन दो जरूरी बातों के लिये दूसरों का मुँह न ताकना पड़े, ऐसा प्रबन्ध प्रत्येक गांव में होना चाहिये।

मोटे वस्त्रों में खादी का उपयोग बड़ा ही अच्छा है। इसके लिए सारे भारत में आन्दोलन और काम हो रहा है। किसानों को चाहिये कि वे भी खादी को पहिनकर लाभ उठावें। खादी से स्वास्थ्य पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। खादी पहिनने से ही अनेक रोग चले जाते हैं। आयुर्वेद के पंडितों ने रोगियों को केवल खादी पहिनाकर ही तन्दुरुस्त कर दिये हैं। क्षय के लिये सफेद खादी अत्यन्त मुफीद है। दुर्बलता, क्षीणता, दाह-रोग, रक्तपित्त, वीर्य का पतलापन, व्याधि, नपुंसकता, प्रदर (स्त्री-रोग), ज्वर, जीर्णज्वर, श्वासकास आदि विविध रोग खादी पहिनने से दूर होजाते हैं। बारीक वस्त्र पहिनने से शरीर निर्बल होजाता है, परन्तु खादी पहिनने से शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलवान बन जाता है। मैं अपने देहाती भाइयों को सम्मति देता हूं कि वे महीन वस्त्रों पर न ललचावें। प्रत्येक काम में पहिनने में, ओढ़ने बीछाने में, खादी का ही प्रयोग करें। खादी ही एक ऐसा कपड़ा है जो आपको वैशाख जेठ की गर्म धूप से और पौष-माघ की भंयकर ठंड से माता की तरह बचाती रहेगी।

यहां जेवरों के विषय में भी थोड़ी सूचना देना ठीक होगा। देहातों में जेवर पहिनने का शौक नहीं है और यदि शौक भी

हो तो आवे कहां से ? क्योंकि वहां तो दुर्भिक्ष-दानव और दरिद्रता-निशाचरी का ताण्डवनृत्य हो रहा है स्त्रियां थोड़ा बहुत जेवर पहिन लिया करती हैं। चांदी, कांसी, पीतल मुलम्म आदि के जेवर अधिकतर काम में लाये जाते हैं। जो बहुत धनी हैं वे सोने के जेवर भी पहिनते हैं। हम अपने ग्रामीण बन्धुओं को सम्मति देते हैं कि वे इन जेवरों के चक्कर में न पड़ें। इनसे कुछ भी लाभ नहीं है। ये सौंदर्य और विलासिता को बढ़ाने वाले हैं। इनसे जविन की सादगी नष्ट होजाती है, जो मनुष्य का सच्चा जेवर है।

यदि पैसा पास में हो तो जेवर बनवाने को मत दौड़ो बल्कि अपने रोजगार-धन्धे में लगाकर अपने काम को खूब तरक्की पर पहुंचा दो। उद्योग-धन्धों के लिये अपना पैसा लगा दो। डेरीफार्म, खाद बनाने के कारखाने और इसी तरह के दूसरे उपयोगी कार्य शुरू करदो। मैं आशा करता हूं कि ग्रामीण भाई मेरे इस कथन पर गौर करेंगे।

ग्राम्य-धर्म

आजकल "धर्म" शब्द माने, मनमाने हो रहे हैं। जो जिसके जी में आता है वह लोगों के सामने रखकर एक पार्टी बना लेता है और उसे धर्म का नाम दे दिया जाता है। इस प्रकार के धर्म कहलाने वाले सैकड़ों धर्म भारत में प्रचलित हैं। धर्मों के लिये भारत की इतनी अच्छी आबहवा है कि यहां

कैसा भी धर्म आनन्दपूर्वक फलता-फूलता है। पृथ्वी पर का ऐसा कौनसा धर्म है जो भारत में नहीं पाया जाता है। कहना अनुचित न होगा कि भारतवासियों ने "धर्म" शब्द का अर्थ-तक भी नहीं जाना है! कई दकियानूसी खयालातों के मनुष्य हैं, जो अपने कुल में चले आने वाले रीति रस्मों ही को धर्म माने बैठे हैं फिर वह भले ही खराब क्यों न हो? कुछ लोग ऐसे हैं जो "धर्म" विषय में तर्क अथवा शंका करना पाप समझते हैं न जाने धर्म को लोगों ने क्या समझ रखा है? आजकल धर्म कुम्हड बतिया बन गया है, जो तर्जनी अंगुली दिखाने मात्र से नष्ट हो जाने की शंका पैदा होने लगती है। जहां धर्म के विषय में लोग इतने बे-खबर और ऐसे भोले हों वहां जो कुछ न हो जाय वही थोड़ा है। धर्म विषय में प्रसिद्ध भारतवर्ष में, आज इसी कारण करोड़ों ऐसे मनुष्य हैं, जो हिन्दू धर्म के अतिरिक्त कई दूसरे धर्मों के अनुयायी बन गये हैं। "आगाखानी धर्म" के अनुयायी यहां लाखों मनुष्य हैं। आगाखां एक मुसलमान है, वह जियादातर विलायत में रहता है। ऐशो-आराम में अपने जीवन की घड़ियां व्यतीत करता है। उसने अपने को श्रीकृष्ण का अवतार प्रकट किया है। आगाखानी गीता और आगाखानी भागवत् लोग श्रद्धा-पूर्वक पढ़ते-पढ़ाते और सुनते-सुनाते हैं। इसी तरह हैदराबाद (दक्षिण) के एक मुसलमान मौलाना मोहम्मद सिदीक ने अपने को दक्षिण के लिंगायत लोगों के आराध्य "चन्निशश्वर"

महादेव का अवतार सिद्ध कर दिया है। इन नये अवतार का एक अखबार "दीने आलम" के नाम से निकल रहा है। इनके शिष्य मोहम्मद हुसेन ब्रह्मचारी अपने गुरु की पवित्र वाणी भक्तों तक पहुंचाने का पवित्र कार्य बड़े उत्साह और भक्तिपूर्वक कर रहे हैं। इन नये देवता की एक पुस्तक भी है। उसका नाम है "सद्वेर आलम" उसमें उसने यह साबित किया है कि गोहत्या करना तो हिन्दुओं का सनातन धर्म है। अर्जुन और श्रीकृष्ण तक ने गो-हत्या की थी। फिर इस समय के हिन्दू इसके खिलाफ कैसे चल सकते हैं। इस पुस्तक में अर्जुन और श्रीकृष्ण के चित्र बनाये गये हैं जो गऊ-वध करते दिखाये गये हैं! इस पुस्तक को हैदराबाद की सरकार ने हिन्दुओं के आन्दोलन करने पर जब्त करली है। एक और कोई मुसलमान मैसूर में धर्माचार्य बन गये हैं। इनके कारण बंगलोर में झगड़ा भी मचा था! कोई मोटे मियां अपने को वीराना पन्थ के अगुआ बताते हैं। सन् १९२६ में एक रतूदास नामक देवता चम्पारन में पकड़े गये थे। इन्होंने नेपाल की हद में यज्ञ साधा था। अन्त में पुलिस ने इसे गिरफ्तार करके बड़े घर की हवा खिलादी। वह पुराना पापी निकला, कई बार सजाएं भी पाचुका था। "गोविन्द भवन" कलकत्ता के हीरालाल अपने को श्रीकृष्ण का अवतार कहकर सैकड़ों बहिन-बेटियों का धर्म नष्ट कर ही चुके हैं। कहां तक कहा जाय! धर्म की ऐसी बुरी तरह

मिट्टी पलीद हो रही है कि कुछ कहते नहीं बनता। इतने पर भी लोग आँखे खोलकर " धर्म " को ढूंढना नहीं चाहते ! ऐसे लोगों का भगवान ही रक्षक है।

हमें इस बात का सन्तोष है कि, गांवों के लोग एकाएकी किसी भी धर्म को झटपट नहीं स्वीकार कर लेते। जब वे पास के शहरों या कस्बों में किसी धर्म विशेष का प्रचार देखते हैं तब स्वीकार करते हैं। हां, ईसाई लोगों की दाल गांवों में खूब गलती है। गांवों के अछूत भाई जैसे चमार, बलाई, भंगी वगैरह जो उच्च कहलाने वाले लोगों से बात-बात में उनके अछूत होने के कारण दुत्कारे और फटकारे जाते हैं, उच्चों के व्यवहार से तंग आकर वे लोग ईसाई या मुसलमान बन जाते हैं। इन ईसाई लोगों के प्रचारक गांव-गांव घूमकर तरह-तरह के लोभ और लालच दिखाकर लोगों को अपने धर्म में दीक्षित करते फिरते हैं। ईसाई लोग अशिक्षित लोगों में अपनी उदारता प्रदर्शन के लिये मुफ्त दवा, पुस्तक, मिठाई, रुपये पैसे वगैरह बांटते फिरते हैं। जहां तहां दवाखाना–अस्पताल और पाठशाला–स्कूल वगैरह खोलकर बड़ी ही होशियारी से अपने धर्म का प्रचार करते फिरते हैं। कभी कभी जरूरत पड़ने पर ये लोग साधुओं का वेष बनाकर भी, गांवों के भोले-भाले लोगों में अपने धर्म का प्रचार करते हैं। ईसाइयों के पास पैसा होने के कारण भी कई गरीब लोग उनके धर्म की दीक्षा लेलेते हैं। कई अछूत लोग उच्च

कहलाने वाले लोगों के बराबर बैठने की इच्छा से, कई लोग नौकरी मिल जाने के लोभ से और कई साहब बहादुर बन जाने की गरज से भी ईसाई हो जाते हैं। इनके प्रचार का ढंग इतना मोहक होता है कि लोग जल्दी ही इनकी बातों में आजाते हैं। यदि "आर्यसमाज" ने इनका मुकाबिला न किया होता तो अभी तक आधे से अधिक हिन्दू, अहिन्दू नजर आते। इस विषय में हमें "आर्य समाज" का आभार मानना चाहिये कि, उसने "हिन्दू समाज" को जगाकर उसकी रक्षा में अपनी यथेष्ट शक्ति खर्च की है।

मैं देहाती भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि पहिले विद्या पढ़ें और उसके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके धर्म के गूढ़ तत्वों को पहिचानने का प्रयत्न करें, और झटपट ही किसी के बहकावे में आकर अपना धर्म न त्याग दें। जब आप पढ जावें तब अपने इतिहास को उठाकर देखना, उसमें आप देखेंगे कि सैकडों हिन्दुओं ने अपने धर्म को बदलना स्वीकार नहीं किया बल्कि सिर कटना और दीवारों में जिन्दे चुने जाकर प्राण देना मन्जूर किया है। मैं आपको यह समझा देना चाहता हूं कि धर्म एक वह अलभ्य पदार्थ है जिसकी तुलना संसार की किसी भी अच्छी से अच्छी वस्तु से भी नहीं की जा सकती। जब हम मामूली से मामूली वस्तु के प्राप्त करने में अपनी सारी बुद्धि खर्च कर देते हैं तो धर्म जैसी अलभ्य और अनुपम वस्तु के लिए विचार न करना और मनमाने धर्म में दीक्षित

हो जाना, बड़ी भारी भूल है। इन बातों को देखकर ही कई रियासतों ने 'धर्म परिवर्तन-कानून' तैयार किया है। इस कानून में कुछ ऐसी शर्तें और नियम रखे गये हैं कि सहज ही में हर कोई मन चला मनुष्य अपने धर्म से दूसरे धर्म में नहीं जा सकता। ग्वालियर राज्य में भी यह कानून बनाया गया है।

आज हम देखते हैं कि इन धर्मों (!!) का ऐसा विकृत रूप हो गया है कि जहां देखिये तहां झगड़े, फसाद, और खून-खराबियां धर्म के नाम पर हो जाया करती हैं। यहां बाजे नहीं बज सकते और वहां घण्टा नहीं बज सकता। बस, इसी बात पर दो विरुद्ध धर्म वाले एक दूसरे की खोपड़ी रंग डालते हैं। आये दिन हिन्दू और मुसलमानों के दंगों में यही बात जड़ रूप थी। वास्तव में देखा जाय तो बाजे से और घण्टा घड़ियाल से धर्म का कोई सम्बन्ध ही नहीं है। परन्तु जब आपस में लड़ने झगड़ने की और दिली जलन निकालने की इच्छा होती है तो दोनों दलों के कुछ नासमझ धर्मध्वजी किन्तु वास्तव में धर्म से पूरे अनभिज्ञ लोग आपस में हाथापाई कर बैठते हैं। ग्वालियर राज्य के दूरदर्शी स्वर्गीय श्री. माधवराव महाराज ने पहिले ही से "रोडरेग्यूलेशन" बनाकर इस भावी उत्पात का प्रतीकार कर दिया था। यही कारण है कि वहां धर्म के नाम पर कभी कोई उत्पात नहीं मचने पाता।

अभी तक हम "धर्म" शब्द का प्रयोग करते आ रहे हैं किन्तु अब हम धर्म का असली रूप बतावेंगे, इसलिये इन धर्मों को मत, पंथ, फिरके, कहना पड़ेंगे। हम अपने देहाती भाइयों को यह बता देना चाहते हैं कि धर्म मुख्य यहां ३-४ हैं। (१) हिन्दू-धर्म, (२) पारसी-धर्म, (३) मुसलमानी-धर्म और (४) ईसाई-धर्म। इन हरएक धर्मों में सैकड़ों फिरके हैं। हिन्दू-धर्म ही में नहीं बल्कि मुसलमानी-धर्म और ईसाई-धर्म में भी सैकड़ों भेद उपभेद हैं और जिस प्रकार हिन्दू-धर्म के मतमतान्तरों में झगड़े और मतभेद हैं उसी तरह इनमें भी हैं। हिन्दू-धर्म को छोड़कर बाकी सभी धर्म यहां विदेशों से आये हैं। मुसलमानों के साथ यहां इस्लाम-धर्म आया और अंग्रेजों के साथ यहां ईसाईमत ने कदम जमाया। ये हमारे स्वदेशी-धर्म नहीं हैं। विदेशी हैं। जब कि देश में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और विदेशी चीजों के त्याग की आवाज उठी हुई है और देशहित के लिये यह जरूरी भी है, तो धर्म विषय भी एक विचारने का प्रश्न है। कौनसा धर्म उपयोगी है और कौनसा अनुपयोगी, इसको अपनी बुद्धि से और विद्याबल से जांचना चाहिये। प्रत्येक धर्म के तत्वों का तुलनात्मक विवेचन करना चाहिये और फिर जो आपकी बुद्धि-रूपी कसौटी पर खरा ठहरे उसे स्वीकार करना चाहिये।

मैं दावे के साथ कहता हूं। मैं ही क्या बल्कि विदेशी विद्वानों ने भी एक स्वर से स्वीकार किया है कि "हिन्दू-धर्म

की फिलासफी पृथ्वी के अन्य धर्मों की फिलासफी से उच्च है। वेद, दर्शन, उपनिषद्, गीता, महाभारत और अन्य उच्चकोटि के ग्रन्थ हिन्दू-धर्म की ही सम्पत्ति है।" इत्यादि बातों से कहा जा सकता है। कि यदि कोई धर्म भूतल पर श्रेष्ठ है तो वह हिन्दू-धर्म है हिन्दू-धर्म के आचार्यों ने धर्मशक की व्याख्या इस प्रकार की है।

"यतोभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सधर्म"।

—महर्षि कणाद्

"जगत्ः स्थितिकारणं प्राणिनांसाक्षादभ्युदये निःश्रेयस हेतुयःसः धर्म।"

—ज० शंकराचार्य

धर्म का कितना अच्छा विवेचन है। हम इस बड़ी बात के उलझन में अपने ग्रामीण भाइयों को न डालकर, धर्म के दस लक्षणों का यहां उल्लेख करेंगे।

घृतिक्षमाध्मो स्तेयं शौच मिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

(१) धैर्य, (२) क्षमा, (३) मन पर काबू, (४) चोरी न करना, (५) सफाई, (६) इन्द्रियों को वश में रखना, (७) बुद्धि, (८) विद्या, (९) सत्य और (१०) क्रोध न करना ये दस लक्षण धर्म के हैं। ग्रामीण भाइयों को चाहिये कि इन लक्षणों पर अमल करें। जिसमें धर्म के ये १०

लक्षण इकट्ठे हों वह मनुष्य नहीं देवता है। उसके चरण पूजा के योग्य हैं। इनमें से जितने भी लक्षण धारण किये जा सकें, ग्रहण करना चाहिये। जो इन दस नियमों के अनुसार चलता है वही सच्चा धार्मिक है। बाकी बातों को धर्म का आडम्बर मात्र समझना चाहिये। हिन्दुओं को चाहिये कि वे अपने धर्म का आदि ग्रंथ वेद को समझें। क्योंकि स्मृतिकारों ने साफ कह दिया है कि—

वेद प्रणहितो धर्म अधर्मस्त द्विपर्यये।

अर्थात्—जिस कार्य के लिए वेद आज्ञा दे, वही धर्म है और जिसके लिए वेद में आज्ञा न हो वही अधर्म है। इसलिये वेद को अपना धर्म-ग्रंथ मानना प्रत्येक हिन्दू का परम कर्तव्य है और वेद अनुकूल कार्य करना ही अपना धर्म समझना चाहिये। आप लोगों को विधर्मी लोग कितने ही बहकावें उनके बहकावे में कभी नहीं आना चाहिये। रुपये-पैसे, स्त्री, धन-दौलत, जमीन, जागीर के प्रलोभन में फँसकर अपने धर्म को कदापि नहीं छोड़ना चाहिये।

आजकल का एक धर्म और भी है, जो प्रत्येक भारतवासी के पालन करने योग्य है। इसकी बहुत सख्त जरूरत है। उसके कुछ अंगों का मैं यहां उल्लेख करता हूँ—

१ स्वदेश-प्रेम।

२ समाज-प्रेम। समाज-सुधार।

३ मनुष्य-प्रेम। ऐक्य, बैर, ईर्षा, द्वेष का त्याग।

४ अनाथ सेवा। अनाथों के प्रति दया प्रदर्शन।

५ अछूतोद्धार। अछूत कहे जाने वाले भाइयों के प्रति शुभ कामना और उदार व्यवहार।

६ परोपकार। यथासम्भव दूसरों का हित करना।

७ विद्या-प्रचार। अपढ़ भाइयों को पढ़ाना-लिखाना।

स्वदेशी वस्तु-प्रयोग। देश के शिल्प, वाणिज्य, व्यवसाय और उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन।

९ दूसरे मतपंथ, मजहबों के लिए उत्तम विचार। भारत के विविध मतपंथों और धर्मों की अकारण निन्दा न करना।

१० स्वतन्त्रता। अपने शरीर को और अपनी आत्मा को किसी के हाथों बेचकर गुलाम न बनना। निर्भयता पूर्वक स्वाभिमान द्वारा अपने अधिकारों की प्राप्ति का प्रयत्न करना।

इस युग में एक ऐसे ही धर्म की जरूरत है। क्योंकि जो जाति गुलाम होती है उसका कोई धर्म और कोई मजहब नहीं हुआ करता। आशा है हमारे देहाती भाई धर्म के इस विवेचन पर अवश्य विचार करेंगे। धर्म के गूढ़ तत्वों का सम-झना और समझाना यद्यपि बहुत ही कठिन है। तथापि इससे बहुत कुछ, इस विषय की उलझन सुलझ जावेगी।

ग्राम-सभा

जहां की जनता अपने कर्तव्य का पालन करती है, वहां सभा सोसाइटी की उतनी जरूरत नहीं होती जितनी कि

अवनत दशा में गिरी हुई प्रजा को। कर्तव्य हीन अविद्या के गहरे गड्ढ़े में पड़ी हुई जाति, समाज अथवा राष्ट्र को विविध सभाओं की जरूरत होती है इसलिये प्रत्येक गांव में एक "ग्राम-सभा" अवश्य होनी चाहिये। प्राचीन समय में ग्राम सभाएँ नहीं होती थीं और न जनता को ही सभा वगैरा करने की जरूरत पड़ती थी। राजा ही अपनी एक सभा रखता था जो उसके सलाह-मश्विरे से राज्य-कार्य चलाता था। इसके अतिरिक्त जब कभी किसी सभा की जरूरत होती थी अस्थाईरूप से बनायी जाया करती थी। उस समय की प्रजा कर्तव्यपरायण थी इसलिये उसे सभा वगैरा की आवश्यकता ही नहीं थी। गांवों में पंच लोग रहते थे, वे सब काम भलि-भांति चलाते थे। उस समय में आज-कल की तरह सभा द्वारा या वोटों के द्वारा पंच या मुखिया नहीं चुना जाता था। अपने निष्पक्ष और सज्जनता के व्यवहार से स्वयम् उसे लोग पंच मान लेते थे। आज हमारे नेताओं को किसने वोट से अथवा सभा द्वारा अपना नेता चुना है? किसी ने भी नहीं। वे अपने सद्गुणों, सद्-व्यवहारों, और उत्तम आचरणों द्वारा स्वयम् ही लोगों के हृदय-मन्दिर की पवित्र प्रतिमा बने हुए हैं। इसी तरह प्राचीन समय में पंच लोग भी थे। आज पंच बनने की प्राचीन पद्धति का अभाव है। अब तो यह देखा जाता है कि जो मनुष्य पैसे वाला हो, वाचाल हो, उद्दण्ड हो, वही पंच समझा जाता है, चाहे वह

निरा मूर्ख और सब तरह से अयोग्य ही क्यों न हो! एक बात और भी देखने में आती है कि किसी पंच के मर जाने पर उसका उत्तराधिकारी-पुत्र पंच मान लिया जाता है। ऐसा होना ही बुरा है। "जहां पंच तहां ईश्वर" लोकोक्ति अब भी प्रसिद्ध है। परन्तु पंचों ने अब अपने व्यवहारों द्वारा लोगों का अपने प्रति जनता का अविश्वास उत्पन्न कर लिया है। यह बुरा है।

हम इस समय की गति को देखते हुए देहातों में ग्राम-सभाओं का होना बहुत जरूरी समझते हैं। जिन्हें अपने गांव की उन्नति देखनी हो उन्हें अपने गांव में "ग्राम-सभा" अवश्य ही स्थापित करनी चाहिये। उस सभा के मेम्बर सभासद गांव के सभी लोग हो सकते हैं इसमें उम्र और योग्यता की कुछ साधारण सी कैद रखी जा सकती है। इस सभा के अन्तर्गत ५ या ११ अथवा आवश्यकतानुसार सभासदों की एक "प्रबन्ध-कारिणी कमेटी" रखनी चाहिये। इस कमेटी में समझदार, पढ़े-लिखे, उदार, सच्चरित्र और परोपकारी मनुष्य ही रखे जाने चाहिये। सभा की मीटिंग हर पन्द्रहवें दिन या हर पूनम को होनी चाहिये। सभा का एक सभापति, एक या दो मंत्री, एक कोषाध्यक्ष होना चाहिये। सभापति और मंत्री के चुनाव में मुँह देखकर तिलक नहीं करना चाहिये। जो योग्य, काम करने वाला, सुधार प्रेमी हो और जिसकी लोग बात मानते हों वही इन पदों पर रखा

जाय। सभासदों पर एक आना या आवश्यकतानुसार इससे ज्यादा मासिक चंदा या जो कुछ भी उचित समझा जाय वार्षिक चंदा रखना चाहिये। "ग्राम-सभा" की देख-रेख में निम्न लिखित कार्य चलने चाहिये।

१. शिक्षा-विभाग—पाठशाला, रात्रि-पाठशाला, कन्या-पाठशाला इत्यादि।

२. कृषि-विभाग—सहकारी बैंक, पशु-पालन, खाद, बीज-भंडार इत्यादि।

३. उद्योग-विभाग—कला-कौशल का शिक्षण, वस्तु-निर्माण,—वस्त्र व्यवसाय इत्यादि।

४. न्याय-विभाग—ग्राम्य-पंचायत द्वारा गांव के झगड़े फसाद निपटाना। सरकारी अदालतों में अपने ग्रामीण भाइयों के साथ गैर कानूनी कामों का विरोध करना। देहाती लोगों को कानून कायदों की जानकारी कराना। रेल, तार, डाक, नहर, सायर, पुलिस, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, चुनाव बेर्डिंग आदि के छोटे-छोटे साधारण नियमों का ज्ञान कराना।

५ स्वास्थ्य-विभाग—गांव की सफाई, रोशनी, छोटासा दवाखाना, प्लेग, हैजे के समय दवा बांटना इत्यादि।

६ रक्षा-विभाग—व्यायामशाला, अखाड़ों की स्थापना, उनमें लाठी, तलवार, कुश्ती वगैरा मर्दानी खेलों का शिक्षण, सेवा-समिति, ड्रिल और रात के वक्त चौकीदारी करना।

७ उपदेश-विभाग—व्याख्यान, अछूतोद्धार, मद्यपान निषेध, तम्बाकू-निषेध, जुआ, चोरी, व्यभिचार आदि दुष्कार्यों का निषेध किया जाय। कथा-भजन कराना और सामाजिक कुरीतियों का विरोध इत्यादि काम किये जावें। पुस्तकालय, लाय ब्रेरी खोली जाय। इत्यादि अनेक उपयोगी कार्य 'ग्राम-सभा' के हाथ में रहने चाहिये। अब हम इन विषयों पर यहां संक्षेप में विचार करेंगे।

१ शिक्षा-विभाग

इस विषय पर हम इसी लेख में स्वतन्त्र रूप से विचार कर चुके हैं। शिक्षण-कार्य ग्राम-सभा की देख-रेख में होने चाहिये, ताकि उनमें किसी प्रकार का दोष नहीं उत्पन्न होने पावे।

२ उद्योग-विभाग

इस विषय पर भी हम स्वतन्त्र रूप से विचार कर चुके हैं। अभी फिलहाल में गांवों के लिए 'वस्त्र-व्यवसाय' ही एक उत्तम गृह उद्योग है। देहाती भाइयों को इस ओर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये। यह कार्य सहज ही कम पूँजी पर चल सकता है और माल भी अच्छी तरह खप सकता है। यदि इसे अच्छे ढंग से किया जाय तो हानि की सम्भावना ही नहीं रहती। आशा है देहाती भाई इस पर विचार करेंगे।

३ कृषि-विभाग

इस विभाग के सभी विषयों पर अच्छी तरह प्रकाश डाला जा चुका है। केवल 'बीज-भंडार' पर थोड़ासा यहां

लिखना उचित समझते हैं। आपने देखा होगा कि बीज के लिये किसान जब कि बोने का समय आता है, किस तरह इधर-उधर मारा-मारा फिरता है, निर्धनता के कारण वह बीज कहीं से उधार लाता है और जैसा भी उसे महाजन तोल देता है वैसा ही वह अपने पल्ले में लेकर घर आ जाता है। झख-मारकर उसे वही बीज अच्छा हो या खराब हो, खेत में बिखेरना पड़ता है। वह कहीं से अच्छा बीज नहीं खरीद सकता, क्योंकि उसके पास पैसा नहीं। साहूकार खुद देदे, अथवा जहां से दिलादे, लेना पड़ता है। फसल आने पर सवाया देने का वादा करना होता है। इस प्रकार किसानों को मुसीबत का सामाना करना पड़ता है। इसलिए ग्राम-सभा को अपने गांव की आवश्यकता के अनुसार 'बीज-भंडार' में प्रत्येक अन्न का बीज रखना चाहिये। इसको या तो सहकारी बैंक के हाथ में देदेना चाहिये या गांव वालों को अलग अलग रुपया एकत्र करके इसे स्थापित करना चाहिये। बीज नक्द रुपयों से या सवाया लेकर देने की पद्धति पर दिया जाय। ग्राम-सभा को इस विषय में अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

भंडार में बीज बहुत ही अच्छा रखा जाय। और उन वैज्ञानिक उपायों से रखा जाय, जिससे फसल अच्छी, जल्दी, निरोग तथा अधिक उत्पन्न हो। एक साल की बोनी के बाद जो बीज बच रहे उसे बेच दिया जाय। यह बात कुछ दिनों के अनुभव से अच्छी तरह आ जावेगी।

४ न्याय-विभाग

न्याय के लिये—अपने गांव के झगड़े-फिसाद निपटाने के लिए एक 'ग्राम्य-पंचायत' ग्राम-सभा की ओर से अच्छे-भले आदमियों की होनी चाहिये। जो झगड़ों को निष्पक्ष भाव से निपटा दिया करे। और पंचायत का फैसला देहाती लोगों को ठीक उसी तरह मानना चाहिये, जिस तरह कि हाईकोर्ट का फैसला माना जाता है। मुकद्दमेबाजी शीर्षक में हमने इस पर विस्तार-पूर्वक लिखा ही है।

अदालतों में जो कुछ भी अन्याय ग्रामीणों के साथ गैर-कानूनी ढंग का किया जाता हो उसकी रोक ग्राम-सभा द्वारा होनी चाहिये। जैसे रिश्वत लेना, गांव के लोग समझकर उनका अपमान करना, उन्हें व्यर्थ ही डाट-धमकी देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना, इत्यादि गैर-कानूनी सूदहारों की रोक का प्रबन्ध ग्राम-सभा को करना चाहिये। ग्राम-सभा को चाहिये कि व्यायामों द्वारा अथवा अन्य किसी ढंग से देहाती लोगों को रेल, तार, डाक, पुलिस, नहर, सायर वगैरा के फायदों को समझा दिया जाय। कम से कम इतना ज्ञान करा दिया जाय कि वे लोग कहीं किसी विभाग में जाकर बेवकूफ नहीं समझे जावें।

देहाती लोग अक्सर सरकारी आदमियों से बहुत डरते हैं। ग्राम-सभा को चाहिये कि उन्हें निर्भयता का पाठ पढ़ावे।

सरकारी कर्मचारियों को देखकर डरना मूर्खता है । हमें पाप कर्म से डरना चाहिये । यदि हम सच्चे और निर्दोष हैं तो डरने की जरूरत ही क्या है । हमने देखा है कि तहसील अदालत का एक मामूली चपरासी और पुलिस का एक साधारण सिपाही भी देहात में बिचारे भोले गरीब किसानों में एक बड़ा-भारी ऑफिसर बन जाता है और इस तरह से उन्हें तंग करता है। कानूनी वकफियत न होने से गरीब लोग उनकी सब कुछ सहते हैं। यह बात उनके दिल से हटा देनी चाहिये। चपरासी और पुलिस कान्स्टेबलों से हरगिज नहीं डरना चाहिये और यदि वे कुछ ज्यादती करें तो ग्राम-सभा को उनका अच्छा इलाज सरकार से लिखा पढ़ी करके करा देना चाहिये।

कानूनी जानकारी न होने से और निर्भयता के अभाव में गांवों के लोगों को बेगार में खूब तंग किया जाता है। "ग्राम सभा" को बेगार के विरुद्ध खूब आन्दोलन करके इसका नामोनिशान उठा देना चाहिये । बेगार में यद्यपि कोई लिया भी जाय तो उसे वही मजदूरी मिलनी चाहिये जो उन दिनों आम रेट हो।

५ स्वास्थ्य-विभाग.

गांव की सफाई वगैरा पर बहुत कुछ लिखा जाचुका है। "ग्राम सभा" को गांव की सफाई का काम अपने हाथ में रखना चाहिये । गांव में आवश्यकतानुसार लालटेनें लगाकर रोशनी का प्रबन्ध भी कराना चाहिये । गांव की म्युनिसिपेलिटी

की तरह ग्राम-सभा को गांव के स्वास्थ्य सुधार की ओर ध्यान देना चाहिये।

गांव में एक छोटासा "औषधालय" भी ग्राम-सभा को स्थापित करना चाहिये। जिसमें गांवों में होने वाली बीमारियों की अचूक दवायें रखी जावें। बुखार, खांसी, सिरदर्द, पेटदर्द, कब्ज, मंदाग्नि, बायगोला, दस्त इत्यादि बीमारियों की हुक्मी दवा जरूर रखना चाहिये। दवाइयां धर्मार्थ दी जावें। बच्चों के रोगों की दवा, घांवों, फोड़े-फुन्सी वगैरह की दवा भी रखी जावें। औषधालय का खर्चा चन्दे से चलाया जाय। पशुओं के लिये भी एक दवाखाना रखा जाय। हैजा और प्लेग होने पर औषधालय की ओर से छोटे बड़े का ध्यान छोड़कर घर-घर दवाइयां पहुंचाई जानी चाहिये जैसा कि पहिले कभी होता था।

६ रक्षा–विभाग.

ग्राम-सभा की तरफ से अखाड़े की स्थापना होनी चाहिये, जिसमें मर्दाने खेल, गतकाफरी, पटा, बनेठी, लाठी, तलवार, दंड, मुग्दर, नाल उठाना, कूद-फांद, बन्दूक का निशाना लगाना, तीर चलाना वगैरह की शिक्षा दी जानी चाहिये। पहिले जमाने में देहाती लोग फुर्सत पाने पर रात के वक्त ऐसे मर्दाने व्यायाम किया करते थे। अब दिन बदिन ये बातें नष्ट होती जा रही हैं और इनकी जगह ताश, चौपड़,

तम्बाकू पीना, गप्पे हांकना वगैरा बढ़ रहे हैं। "ग्राम सभा" को अपने गांव में अखाड़ा और व्यायामशाला जरूर ही चलानी चाहिये। इस काम को गांव का जीवन समझकर इधर ध्यान देना अत्यावश्यक है। इसके बिना सब उन्नति व्यर्थ है।

गांव में एक छोटीसी "सेवा समिति" भी ग्राम सभा की देखरेख में चलनी चाहिये। दीन गरीब अपाहिजों को संकट के समय मदद करने के लिये इसका संगठन होना चाहिये। अनाथों की देखरेख, लावारिश बीमारों को दवा पहुंचाना, उस समय उनकी सेवा सुश्रूषा करना, यथोचित यथा-सम्भव उनकी मदद करना सेवासमिति का धर्म होना चाहिये। लावारिश मुर्दों को जलाना, आग लग जाने पर उसे बुझाना, किसी संकट के आपड़ने पर उसे बन सके उतनी मदद पहुं-चाना इत्यादि काम सेवासमिति के सिपुर्द होने चाहिये। चोर, डाकुओं के भय के समय रात को अपने गांव की रक्षार्थ पहिरा देना। स्वर्गीय ग्वालियर महाराज ने "जमय्यत हिफाजत देहा" कायम की थी। उसका यही उद्देश था। परन्तु जनता ने उसे नहीं अपनाया। अब जनता को ओर खास करके देहाती भाइयों को अपनी रक्षा के लिये आप खड़े होने का अभ्यास करना चाहिये।

७ उपदेश-विभाग

तम्बाकू-शराब, आदि पर बहुत कुछ पीछे कह आये हैं। ग्राम-सभा को चाहिये कि वह गांव में बढ़ने वाले पापों

को उपदेश द्वारा रोके। व्याख्यानों द्वारा जुआ, चोरी, व्यभिचार, असत्य-भाषण, नशेबाजी आदि दुष्कर्मों पर प्रकाश डाला जाय और उनसे बचने के लिये देहाती भाइयों को अच्छी तरह समझा दिया जाय।

रात के वक्त मंदिर में, अथवा चौपाल में "ग्राम-सभा" की ओर से नित्य रामायण, महाभारत या किसी दूसरे पुराण की कथाएं सुनाई जावें और इसी सिलसिले में ज्ञान चर्चा भी होती रहे। सामाजिक कुरीतियों के हटाने का उपदेश भी दिया जाय। गाना बजाना भी हो लेकिन गाने सभी उपदेशप्रद, ईश्वर सम्बन्धी, समाज सुधारक और देश प्रेम के हों। गन्दे और भद्दे गाने हरगिज न गाये जावें। अच्छे-अच्छे खेल-तमाशे, लीला, नाटक वगैरा किये जावें जिनमें गन्दापन और बेहूदगी न हों।

उपदेश विभाग के अन्तर्गत एक छोटी-सी लायब्रेरी-पुस्तकालय भी गांव में जरूर होना चाहिये, जिसमें कुछ अच्छे-अच्छे उपयोगी साप्ताहिक पत्र, मासिक पत्र और पुस्तकें रखी जावें। काम धन्धे से निपटकर लोग समाचार पत्र और पुस्तकें पढ़ा करें। जो पढ़ न सकें उन्हें पढ़कर सुनाया जाय और देश के हाल-चालों से उन्हें परिचित रखा जाय।

हरसाल एक उत्सव, जिसे मेला भी कहा जा सकता है ग्राम सभा की तरफ से १ या अधिक दिन के लिये किया जाय।

उसमें गांव की सब विशेषताएं प्रदर्शित की जावें। एक नुमा-यश भी साथ में हो, अखाड़े के खेल हों, कुश्ती हों, अच्छे काम करने वाले, शिल्पी, कारीगर, लोगों को उनकी कला का आदर करने के लिये, इनाम वगैरा दिये जावें। इस तरह "ग्राम-सभा" गांव को आदर्श बनाने में कुछ उठा न रखें।

"ग्राम-सुधार" विषय पर जितना भी हमें कुछ लिखना था वह यहां संक्षेप में या विस्तार में आपकी सेवार्थ लिख चुके, और भी कई ऐसे विषय हैं, जिन पर लेखनी चल सकती है; किन्तु अभी इन विषयों के आगे उन पर लिखना अनुचित है। जब तक हमारे गांवों में हमारे लिखे सुधार न हो जावें तब तक उन पर लिखना एक तरह से व्यर्थ ही सा है, या यों कहिये कि इतना हो जाने पर आगे के विषय आप ही समझ में आने लगेंगे और मार्ग प्रशस्त हो जावेगा।

अन्त में मेरी अपने देहाती भाइयों से प्रार्थना है कि "अब अधिक गफलत में न रहो, उठो, जागो; आपके उठने से ही देश का उत्थान है और आपके पड़े रहने ही से इसका पतन है। आप अपनी जिम्मेवारियों को देखो, राष्ट्र का पतन और उत्थान आप ही पर निर्भर है। देखो, वह जर्जर शरीर वृद्ध कृषक भारत बड़ी आशा भरी सकरुण दृष्टि से तुम्हारी ओर ताक रहा है। देखो उस ओर देखो। उसकी दशा पर विचार करो और फिर जो आपके जी में आवे कर दिखाओ"। बस इतनी ही प्रार्थना है।

डेयरी (DAIRY).

अंग्रेजी भाषा में डेयरी उस स्थान को कहते है जहां पर पर घी दूध इत्यादि उत्पन्न किया जाता है। डेयरी फार्मिंग (Dairy forming) से अभिप्राय है—दुधारू पशुओं को रखकर दूध, घी, मक्खन इत्यादि पैदा करना और बेचना। पिछले प्रकरणों के पढ़ने से यह मालूम हो गया होगा कि, इस समय हमारे देश में मक्खन, घी, दूध इत्यादि की जो दशा हो रही है यदि यही दशा रही और इसकी रक्षा का कुछ भी उपाय नहीं किया गया तो कुछ दिनों पीछे, दूध घी के दर्शन होना असम्भव है। दूध के बिना जीवन-यात्रा कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। कुछ लोगों का ख्याल है कि दुधारू पशु यदि नष्ट हो जावेंगे तो देश को उससे कुछ भी हानि नहीं हो सकेगी क्योंकि स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि स्थानों से जमा हुआ दूध (Condenced Milk) मक्खन या पनीर मिल सकता है। बहुत से फेशनेबल लोगों को यह जमा हुआ दूध प्रिय भोजन बन रहा है। यह दूध क्या है, एक प्रकार का खेल है। उस दूध का मक्खन तो यूरोप वाले निकाल लेते हैं और उस अवशिष्ट सफेद पानी में चीनी मिलाकर जमाते हैं, और उसे इस देश में भेजते हैं। वही मक्खन निकला हुआ, जमा और महीनों पुराना दूध हम काम में लाते हैं तथा हमारे बच्चों को

पिलाया जाता है। यह जमा हुआ दूध गौ का है, या भैंस का है अथवा बकरी का है, कुछ भी नहीं जाना जासकता। इसी प्रकार देश में एक प्रकार का घी भी विदेशों से आने लगा है। इस घी का नाम है वेजीटेबल घी (Vegetable Ghee) नाम तो इसका वेजीटेबल अर्थात् "वानस्पतिक घृत" है किन्तु न जाने वास्तव में यह किन-किन पदार्थों से तय्यार किया जाता है। हमारे भारतवर्ष में इस घी के सैकड़ों डिब्बे रोज खर्च होने लगे हैं। यह सस्ता है। हमारे देशवासी बिना सोचे-विचारे इस प्रकार के पदार्थों को खाने पीने लगते हैं; जिससे धन और धर्म तो नष्ट होही जाता है किन्तु साथ ही स्वास्थ्य भी स्वाहा हो जाता है। जब ऐसी दशा है तब भारतवर्ष में ऐसी चेष्टा क्यों नहीं की जाती कि, जिससे देशवासियों को सुभीते से दूध, घी ओर मक्खन मिल सके!

दूध, घी इत्यादि की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय तो यह है कि प्रत्येक घर में आवश्यकतानुसार गौ अथवा गौएँ पाली जावें। किन्तु वर्तमान काल में यह एक कष्ट साध्य-विषय-सा बन गया है। छोटे-छोटे गांवों के रहने वाले दुधारू पशुओं को पाल भी सकते हैं, किन्तु कस्बों ओर बड़े-बड़े नगरों के निवासियों को तो पशु-पालन में बड़ी ही असुविधाएं हो रही हैं। छोटे-छोटे ग्रामों के निवासी प्रायः गरीब होते हैं इसलिये वे दुधारू पशुओं को नहीं पाल सकते। बड़े नगरों के लोग

पाल सकते हैं, किन्तु गोचर-भूमि के अभाव, चारे की महंगी से, और म्युनिसिपालिटियों के अनुदार कानूनों के कारण वे पशु पालन करके दूध प्राप्त करने की अपेक्षा, बाजारू, रोग-कारक दूध पी लेना पसन्द करते हैं। हिन्दुओं के घरों की शोभा गौ से है—प्रत्येक हिन्दू अपने घर में गौ रखना चाहता है। गोस्वामी हिन्दुओं में ही होते हैं—गोत्र हिन्दुओं में ही कहे जाते हैं, गोष्ठी की उन्नति के इच्छुक हिन्दू ही हैं, गोविन्द की भक्ति द्वारा गोलोक हिन्दू ही प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु करें क्या? विवश हैं। परिस्थिति इस प्रकार की पैदा करदी गई है कि हम हिन्दू लोग गोरक्षा के लिये कुछ भी नहीं कर सकते!

इस समय यदि गोवंश की रक्षा का कोई उपाय है तो वह डेयरी के ढंग पर किया जाने वाला पशु-पालन कार्य है। भारत में गोवंश की रक्षा के लिये अब शीघ्र ही स्थान-स्थान पर गोरक्षक कम्पनियां कायम करने की आवश्यकता है। उन कम्पनियों में दुग्धालयों (Dairy) की स्थापना होनी चाहिये। ऐसा होने पर ही सर्व साधारण को दूध, घी, मक्खन वगैरह मिल सकेगा। हमारे शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार यह कार्य वैश्य वर्ण का है, किन्तु इस समय वैश्य-समाज से ऐसी आशा करना भूल है। प्राचीन समय में भी इस प्रकार की डेरियां थीं। डेयरियों के स्वामियों को गोप

डेयरी चला सकते हैं। यदि भारतीय नरपति गण इस ओर ध्यान दें तो बहुत ही शीघ्र गोरक्षा हो सकती है।

भारतीय धनिक और समझदार लोग यदि भारत में डेयरी फार्म की स्थापना करें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है। क्योंकि भारतीय गौओं का दूध विदेशीय गौओं से अच्छा होता है। यहां भूमि, चारा, मजदूरी और दुधारू पशु अन्य देशों की अपेक्षा सस्ते हैं। यहां दूध और घी का दाम अन्य देशों की अपेक्षा अधिक मिलता है। विदेशीय गौओं के २५ से ४० सेर तक दूध में १ सेर मक्खन निकलता है। भैंस के ८ से १२ सेर तक दूध में से १ सेर मक्खन निकलता है। इतने पर भी इंग्लैण्ड में १॥) से १॥।) सेर तक और अमेरिका में ॥। से १।) सेर तक मक्खन मिल सकता है; परन्तु उसी एक सेर मक्खन का दाम भारतवर्ष के बड़े-बड़े नगरों में २) से २॥) तक है। यूरोप में दूध डेढ़ आने से ढाई आने तक मिल जाता है, अमेरिका में ⌐)। से ≈) सेर तक अच्छा दूध मिलता है किन्तु भारतवर्ष में दो आने से ।⌐) तक का भाव है। यहां दूध से घी या मक्खन बनाने के लिये विदेशों की अपेक्षा बहुत कम व्यय होता है। यहां की भूमि चारे के लिये तथा गो-खाद्य उत्पन्न करने के लिये अन्य देशों की अपेक्षा उत्तम है। इत्यादि कारणों से भारतवर्ष में जगह-जगह डेयरियां स्थापित करने से दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक लाभ हो सकता है।

यद्यपि डेयरी को सरकारी सहायता मिलने की भी आशा है तथापि सरकारी सहायता पर अवलम्बित न रहकर हमें अपने ही बलपर डेयरी कायम करनी चाहिये। इस व्यवसाय में हानि होने की स्वप्न में भी आशा नहीं की जा सकती। १००) और १५०) रु० मूल्य की गौएँ रखकर भी यदि डेरी का काम चलाया जावे तब भी नुकसान तो किसी दशा में हो ही नहीं सकता। यूरोप की पद्धति पर यदि यहां डेयरियां चलाई जावें तो खूब मुनाफा उठाया जा सकता है। भारतवासियों की बेपरवाई से तथा इस बढ़ती हुई दरिद्रता के कारण गौएँ कम दूध देने वाली बन गयी हैं। यदि इन्हें उचित रीति से खिलाया-पिलाया जावे और पालन-पोषण का विशेष ध्यान रखा जावे तो अब भी भारतीय गौओं के दूध की आशातीत वृद्धि हो सकती है। आजकल लोग यूरोप के दुधारू पशुओं का मूल्य और उनके दूध बहुत देने के समाचार पढ़कर आश्चर्य करते हैं। किन्तु जिन्होंने "आइनये अकबरी" पढ़ी है उन्हें आश्चर्य करने की कोई आवश्कता नहीं। लिखा है कि:—

"The cows give up word of a help maund of milk." (P. 199)

आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व भारतीय गौएँ प्रातिदिन २० सेर से अधिक दूध देती थीं। इस समय भी गुजरात तथा काठियावाड़ की गायें २० सेर से २५ सेर तक नित्य

दूध देती हैं। यूरोप वाले असाधारण प्रयत्नों को करके तथा वैज्ञानिक ढंग से भोजन और जल देकर इतना दूध प्राप्त करते हैं ! सारांश यह कि डेयरी भारतवर्ष में कदापि असफल नहीं हो सकती।

अब यहां यह प्रश्न होता है कि डेयरी-फार्मिंग यदि भारतवर्ष के लिये लाभदायक है तो इस ओर व्यवसाइयों का ध्यान क्यों नहीं जाता ? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि " हम लोग या तो व्यवसाय करना जानते ही नहीं या करना नहीं चाहते। गौ-पालन करने को हम लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं—इसे ग्वालों तथा घोसियों का धंधा समझते हैं। भारतवासियों ने जीवन निर्वाह के लिये नौकरी मिल जाना ही परम-पद मिलने के समान समझ लिया है। हमारे देश के जो लोग गो-पालन का कार्य करते हैं वे बिल्कुल अपढ़ तथा मूर्ख होते हैं। हम लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। जो व्यक्ति किसी काम के योग्य नहीं, और जो बुद्धि तथा ज्ञान से शून्य होता है उसे ही पशु-पालन के लिये नियत किया जाता है !! फिर भला सोचिये कि भारतीय पशु-धन की उन्नति कैसे हो सकती है ? यहां के पढ़े लिखे लोग इम्तहान पास करते ही १०) या १५ रु० की नौकरी ढूंढते फिरते हैं, परन्तु उन्हें गो-पालन के व्यवसाय से धन कमाने की नहीं सूझती ! यूरोप के कितने ही नव-युवक दूर देशों में जाते हैं। हम यहां एक

हिसाब देकर यह समझाना चाहते हैं कि एक गौ से एक व्यक्ति ३०) रु० मासिक अच्छी तरह कमा सकता है।

मान लीजिये कि एक अच्छी देहाती गौ पांच सेर दूध नित्य देती है। इस गौ का मूल्य अधिक से अधिक ९० या १०० रुपये होगा। चार आने सेर के हिसाब से उसके नित्य के दूध का मूल्य १।) रुपया रोजाना हुआ। इस प्रकार ३७-३८ रुपये का दूध प्रति: महीने बिका। इसमें से ७ या ८ रुपये मासिक गौ का खर्च—घास, भूसा, खली, चारा, चोकर आदि का काट दीजिये तो सूखे ३०) रुपये प्रति मास एक गौ के द्वारा आमदनी हो सकती है। इतनी आमदनी एक सामान्य ग्रेजुएट, स्कूल के शिक्षक या किसी ऑफिस के हेड क्लर्क को भी इस नौकरी के युग में कठिनता से प्राप्त होती है।

इस उपरोक्त हिसाब में गौशाला का किराया, नौकर का वेतन, आदि इसलिए नहीं जोड़ा गया कि यह खर्चा डेयरी के ढंग पर गोशाला चलाने पर ही होता है। एक गौ घर में ही रखी जा सकती है, और उसकी देख-रेख स्वयं मालिक ही कर सकता है। इसके अलावा गौ के गोबर से बने हुए कण्डों का मूल्य भी आवेगा। जब गौ दूध देने से बन्द हो जावेगी तब उस समय की घटी की पूर्ति उसके बछड़े या बछिया के मूल्य से होजावेगी।

डेयरी फार्म कायम करने के लिए भारत में कितने ही ऐसे प्रान्त हैं जहां पर बहुत अधिक भूमि थोड़ी मालगुजारी

देने पर ही मिल सकती है। ऐसे प्रांतों में यदि इस विषय के प्रेमी, पढ़े-लिखे लोग जाकर डेयरी का व्यवसाय आरम्भ करें तो अवश्य ही लाभ उठा सकते हैं। नौकरी की तलाश में बंगलों पर चक्कर काटने तथा खानसामों को हाथ जोड़कर खुश करने की दिक्कत ही दूर हो जावेगी। वे यदि वैज्ञानिक ढंग से गोपालन और उत्पादन आदि कार्य अपनी देख-रेख में करावें तो शीघ्र ही भारत में पुनः गोवंश उन्नतावस्था को प्राप्त हो सकता है। यही उपाय है कि जिससे देश की बढ़ती हुई इस दरिद्रता को रोका जा सकता है। रोगों को मिटाने का सबसे सुगम उपाय यही है। यदि हमारे पढ़े-लिखे भाइयों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ तो निस्संदेह इसे अपने अभ्युदय का चिन्ह समझना चाहिये। पश्चिम के देशों में डेयरी-फार्म स्थापित करने की प्रणाली इस समय खूब प्रचलित है। हमें भी उनके ही ढंग पर कार्य आरम्भ करना चाहिये। डेयरी की देख-रेख पर जो व्यक्ति मुकर्रर किया जावे वह इस विषय का अच्छा ज्ञाता होना चाहिये। यदि कोई इस प्रकार की संस्था में काम किया हुआ अनुभवी व्यक्ति मिल सके तो और भी अच्छी बात हो। उस मनुष्य में कष्ट-सहिश्नुता, कार्य-दक्षता और सज्जनता अवश्य होनी चाहिये। मूर्खों के भरोसे इस काम को कदापि नहीं छोड़ना चाहिये। इस कार्य में अन्य कार्यों की भांति पहिले मूलधन—पूँजी की जरूरत है। कम से कम १० या १२ हजार रुपये पहिले-पहिल इस व्यवसाय को

आरम्भ करने के लिये अवश्य होने चाहिये । १० या १२ हजार की पूँजी से उठाये गये डेयरी फार्म में २५-३० से अधिक गायें नहीं हो सकेंगी । एकसौ दुधारु पशुओं की डेयरी खोलने के लिए ५००००) के मूलधन की जरूरत है । इसमें गायें, भूमि, गोशाला, गोपालकों के रहने के घर और दूसरे सभी आवश्यकीय सामान आजावेंगे तथा कुछ पूंजी भी बच रहेगी । यदि जमीन और मकान किराये पर लिया गया तो इतने मूलधन की जरूरत नहीं पड़ेगी । परन्तु किराये की जमीन पर डेयरी चलाने से लाभ बहुत ही कम होगा । डेयरी में निम्न कारणों से हानि पहुँचती है, अतएव इस विषय में सावधान रहने की बहुत आवश्यकता है:—

१ अनुभव हीन मनुष्यों द्वारा डेयरी फार्म का प्रबन्ध कराना ।

२ डेयरी का समस्त काम नौकरों के भरोसे पर छोड़ बैठना ।

३ दुधारू पशुओं की अच्छी तरह पहिचान न आना ।

४ पशुओं के लिये उपयोगी स्थान न होना ।

५ पशुओं को खिलाने-पिलाने के विषय में अनभिज्ञ होना ।

६ पड़ोसी व्यवसाइयों का डेयरी के विरुद्ध विचार रखना ।

७ अच्छे पशुओं का न होना ।

८ अच्छे साँड़ों की कमी । इत्यादि

उपरोक्त बातों से हानि होती है । यदि डेयरी के संचालक निम्न लिखित बातों का ध्यान रखेंगे तो उन्हें अवश्यमेव लाभ होगा:—

१ डेयरी के संचालक इस विषय के पूर्ण मर्मज्ञ हों

२ डेयरी का स्वामी सब नहीं तो आवश्यकीय कार्यों को स्वयं करे अथवा अपनी देख-रेख में नौकरों से करावे। स्वामी को स्वयं इस बात का ज्ञान अवश्य होना चाहिये कि किस काम को कैसे और कब करना चाहिये? नौकरों की उद्दण्डता और हस्तक्षेप किसी काम में नहीं होना चाहिये।

३ डेयरी का स्वामी एक विश्वस्त व्यक्ति होना चाहिये—जिसमें लोगों का पूर्ण विश्वास हो और उसे वेही कार्य करने चाहिये जिनेस लोगों में अविश्वास नहीं फैलने पावे।

४ दूध, मक्खन, घी आदि का प्रबन्ध यथेष्ट होना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि डेयरी के लगे बंधे ग्राहक दूसरे स्थानों से अपनी जरूरत पूरी करें और कष्ट पावें।

५ डेयरी का मूलधन (Capital) इतना तो अवश्य ही हो कि वह आवश्यकीय वस्तुएं खरीद सके और उनके लिये उसे रुपये सूद पर कर्ज न लेना पड़े।

६ पशुओं का व्यय उनकी आय से अधिक कदापि नहीं होना चाहिये।

७ इंग्लैंड, स्वीजरलैंड, डेन्मार्क, अमेरिका इत्यादि किसी देश में जाकर डेयरी का कार्य सीख आना चाहिये—या सीखे हुए व्यक्ति को डेयरी कार्य के संचालन में नियुक्त करना चाहिये।

८ डेयरी-फ़ार्म किसी बड़े नगर के पास होना बहुत जरूरी है। डेयरी-फार्म रेल्वे स्टेशन के पास होना चाहिये, जहां से दूध, मक्खन इत्यादि ठीक समय पर मिल सके।

९ डेयरी-फार्म से दूध, मक्खन आदि प्रातः समय ५-६ बजे के बीच और सायंकाल को ४॥ से ६॥ के बीच लोगों के पास पहुंच जाना चाहिये।

१० डेयरी-फार्म का स्थान आसपास के स्थान से ऊँचा होना चाहिये। जगह बिल्कुल सूखी रहनी चाहिये।

११ एक गौ के पीछे सात बीघा जमीन के हिसाब से गोचर-भूमि होनी चाहिये। यह गोचर-भूमि डेयरी के पास ही होनी चाहिये, जिसमें बिना दूध के पशु स्वच्छन्दता पूर्वक चरते रहा करें। एक गौ के लिये २ बीघा जमीन चारे की रख और पांच बीघे में ऐसी चीजों की खेती की जावे जो उनके खाने में सहायता दे।

१२ डेयरी में अच्छे दुधारू पशु होने चाहिये। जिस पशु से दस महीने में ३७-३८ मन से कम दूध हो और सवा दो मन से कम मक्खन निकलता हो उस पशु को डेयरी में रखने से लाभ नहीं हो सकता। ऐसे पशु को डेयरी में रखने चाहिये जो अधिक दिनों तक अधिक दूध दे सकते हों।

१३ जिन गौओं के नीचे दूध कम हो उन्हें वैज्ञानिक क्रिया द्वारा, खान-पान देकर तथा औषधोपचार द्वारा अधिक दूध देने वाली बनानी चाहिये।

१४ डेरी वालों को हिसार, नीलोर, गुरगेरा, गुजराती और सिंधी गौएं रखनी चाहिये। ये गौएं अच्छी दुधारू होती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ दोगली गाएं भी अच्छा दूध देने वाली निकलती हैं।

१५ जब गौ दूध न दे तो उसे रखना चाहिये, बेच नहीं डालना चाहिये और फिर जब वह बच्चे दे तब उससे दूध लिया जावे। इस तरह करने से ही डेयरी वालों को सफलता मिलती है।

१६ डेयरी वालों को अपनी गौ से दूध द्वारा पैसा प्राप्त करने की अपेक्षा उस गौ के बच्चे से अधिक लाभ होता है। जब गौ दूध देती हो तब उसे खरीद लाना और दूध देना बन्द होने पर उसे बेच डालना—बहुत हानि पहुंचाता है। यदि अच्छी गोचर-भूमि हो तो बिना दूध की ठांठ गाय के पालने में अधिक खर्च नहीं होता।

१७ डेयरी में अच्छे-अच्छे हिसार और नेलोरी सांड रखने चाहिये। क्योंकि बिना अच्छे सांडों के न तो बच्चे ही अच्छे होते और न गौ ही अधिक दूध देती हैं।

१८ भैसों को डेयरी में रखने से सफलता नहीं मिल सकती। क्योंकि भैंस बहुत बड़ी और अधिक खाने वाला पशु है। एक गौ से तिगुना खाद्य भैंस के लिये चाहिये। भैंस गौ से अधिक नाजुक जानवर है। वह शीघ्र ही रोग ग्रस्त हो जाती है उसके बच्चे का जीवित रखना अत्यंत कठिन होता है। इन्हीं

कारणों से भैंस डेयरी के उपयुक्त पशु नहीं है। इसके अतिरिक्त भैंस का दूध गर्म होता है और जब तक उसमें पानी न मिलाया जावे तब तक वह जल्दी पच नहीं सकता। ठंडे देशों में भैंस का दूध लाभदायक होता है, परन्तु गर्म देशों में हानि पहुं-चाता है। बच्चों के लिए तो भैंस का दूध अत्यंत हानि कारक होता है। रोगियों को भी भैंस का दूध हानि पहुंचाता है।

१९ डेयरी में भैंसें रखकर तथा उसमें पानी मिलाकर गौ के दूध के साथ बेचने से डेयरी की प्रतिष्ठा घट जाती है।

२० डेयरी वालों को मक्खन ही बेचना चाहिये। घी बनाकर बेचने से लाभ होने की बहुत ही कम आशा है।

२१ अपने ग्राहकों को शुद्ध वस्तु, ठीक समय पर तथा उचित मूल्य पर पहुंचाने का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। सारांश कि ग्राहकों की नाराजी का कारण पैदा नहीं होने देना चाहिये।

२२ डेयरी के नौकर दूध में पानी मिलाकर नहीं बेच सकें इसका प्रबन्ध करना चाहिये। एक नलदार शुद्ध बरतन में दूध रखकर ग्वालों के हाथ बाजार में ग्राहकों के पास पहुं-चाना चाहिये। बरतन को ताला लगाकर उस पर मुहर चपड़ी लगा देना चाहिये। ताकि वे दूध में पानी नहीं मिला सकें और टोंटी खोलकर ग्राहकों को शुद्ध दूध दे सकें।

२३ डेयरी के नौकर पशुओं के खाद्य को चुराकर और उसे बेचकर पैसा न कमाने पावें, इस बात पर कड़ी दृष्टि रखनी

चाहिये। नौकर लोग व्यापारियों से मिलकर अपनी जेब गरम करते हैं—इसके लिये खली, भूसा, बिचाली, दाना इत्यादि बेचने वालों से मिलकर और उनसे कुछ दस्तूरी की शक्ल में खराब माल ले आते हैं। ऐसा न होने पावे, इसका अच्छी तरह ध्यान रखना चाहिये।

२४ चमार लोग नौकरों से मिलकर चमड़े के लिये दस्तूरी मुकर्रर कर देते हैं। इस दस्तूरी के लोभ में आकर डेयरी के नौकर पशुओं को धीरे-धीरे विष देकर मार डालते हैं। डेयरी का स्वामी समझता है कि पशुओं में रोग फैल गया है।

२५ जिन व्यवसाइयों को डेयरी के कारण कुछ हानि पहुंचती है वे नौकरों को दस्तूरी देकर ऐसा उपाय करते हैं जिससे कि पशुओं का दूध कम हो जाता है। कभी-कभी प्रतिद्वन्दी व्यवसायी डेयरी के विरुद्ध जनता में झूठी चुगलियां कराते हैं और ऐसी बातें पैदा कर देते हैं जिनसे कि लोग डेयरी वालों का दूध लेना ही बन्द कर देते हैं। ऐसी बातों से डेयरी के अधिकारियों को सावधान रहना चाहिये।

२६ डेयरी के स्वामी को सब से प्रथम ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि पशु नीरोग और बलवान रहें।

२७ गौओं को खाने के लिये प्रति-दिन समय पर देना चाहिये उनके स्नान, आहार और व्यायाम आदि के लिये टाइम-टेबल (Time table) बना लेना चाहिये।

२८ गौओं को स्नान कराकर तथा झाड़ पोछकर हमेशा साफ सुथरी रखनी चाहिये। उनके शरीर में कीचड़ आदि नहीं लगने पावे इसके लिये बड़ी सावधानी रखनी चाहिये।

२९ डेयरी में गौओं को सताने वाले जन्तु, जैसे मक्खी, मच्छर, पिस्सू बगें, चिंचडियां, कलीले, चिंउटी, चींटे, बर्रे आदि नहीं होने देना चाहिये।

३० डेयरी विषयक ज्ञान प्राप्त करते रहने के लिये अध्यक्ष को तत्सम्बन्धी साहित्य पढ़ते रहना चाहिये। हिन्दी भाषा में इस विषय की पुस्तकें और समाचार-पत्र प्रकाशित होने चाहिये।

३१ गो-शाला में प्रकाश और खुली हवा निर्बाध-रूप से आने का प्रबन्ध होना चाहिये।

३२ गोबर वगैरा कचरा कूड़ा गो-शाला से बहुत दूरी पर जमा करना चाहिये, और उसे ढांक कर रखना चाहिये। गो-शाला से गोबर और मूत्र शीघ्र ही साफ कर देने चाहिये।

३३ गौ को दोहने के पूर्व सूखा या धूल मिला हुआ खाद्य नहीं देना चाहिये।

३४ गर्मी के मौसम में गौ-शाला को पानी से छिड़क कर ठंडी कर देना चाहिये।

३५ डेयरी में जहां दूध रखने का स्थान हो वह बहुत ही पवित्र होना चाहिये।

३६ चतुर डॉक्टर से वर्ष में एक-दो बार पशुओं की परीक्षा करा लेनी चाहिये।

३७ बीमार गायों को स्वस्थ गायों में नहीं रखना चाहिये, उन्हें शीघ्र ही वहां से हटाकर दूसरे स्थान में रखना चाहिये।

३८ गौ को दुहने के पहिले या भोजन देने के पूर्व दौड़ाना और भगाना ठीक नहीं है। दुहने के लिये गौओं को धीरे-धीरे ले जाना चाहिये।

३९ गौ को मारना, चिल्लाकर डराना, चमकाना या किसी अन्य उपाय द्वारा उसे कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिये। ऐसे बर्ताव से गौ के दूध में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि गौ एक प्रेमी पशु है। वह प्रेम की भूखी रहती है। प्रेम से वह शीघ्र ही पोस मानने लगती है। योगिराज श्रीकृष्ण का गो-चारण प्रत्येक भारतीय के लिये आदर्श होना चाहिये।

४० गौओं के भोजन में एकदम कदापि परिवर्तन नहीं कर देना चाहिये।

४१ गौओं को स्वच्छ, निर्मल, स्वादु और पवित्र जल पिलाना चाहिये। सड़े गले बदबूदार, बेजायका पानी से उसके दूध पर बुरा प्रभाव होता है।

४२ गौओं का भोजन अत्युत्तम, ताजा, पौष्टिक और यथेष्ट होना चाहिये। सड़ा, गला, बासा भोजन भूलकर नहीं देना चाहिये।

४३ गौओं को मुट्ठी भरकर जबरन उनके मुंह में अनिच्छित नमक नहीं देना चाहिये। बल्कि गोशाला में नमक ऐसी जगह रख देना चाहिये जहां गौएँ उसे इच्छानुसार स्वयं खा लिया करें। सेंधा नमक का, जिसे लाहोरी नमक भी कहते हैं, एक २०।२५ सेर का ढेला गौशाला में रख देना चाहिये, गौएँ उसे इच्छानुसार चाटकर अपनी इच्छा पूर्ण कर लिया करेंगी।

४४ प्याज, बन्धी गोभी, मूली, गाजर इत्यादि दूध दुहने के पहिले कदापि नहीं देना चाहिये इससे हानि होती है। ऐसी चीजें दूध दुहने के बाद ही खिलानी चाहिये।

४५ गौ के शरीर पर यदि रोम अधिक हों और उनसे उसकी स्वच्छता में किसी प्रकार की बाधा आती हो तो कैंची या मशीन कैंची (Hair cutting machine) से उन्हें काट देने चाहिये।

४६ प्रसव के बीस दिन पहले और ५ दिन बाद का दूध काम में नहीं लाना चाहिये।

४७ गौ को दुहने के पूर्व दुहने वाले को तमाखू खाना या पीना नहीं चाहिये। हाथ खूब धोकर तथा सूखे कपड़े से पोंछकर गौ को दुहना चाहिये। गौ दुहने वाले को बिल्कुल साफ वस्त्र पहिनना चाहिये। यदि गौ-दोहन के समय की एक पोशाक ही अलग रखी जावे तो सब से अच्छा हो।

४८ नित्य मुकर्रर वक्त पर ही गौ का दूध निकालना चाहिये। गौ के दुहने में शान्ति, स्वच्छता और शीघ्रता रखनी चाहिये।

४८ दुहने के पहिले गौ के चारों थनों में से एक एक धार भूमि पर छोड़ देना चाहिये। क्योंकि यह भाग निस्सार और दूसरे दूध को बिगाड़ने वाला होता है।

५० दूध में यदि स्वाभाविक रंग लाल, पीला आदि नजर आवे तो उस दूध को फेंक देना चाहिये।

५१ सूखे हाथों पशु दुहना चाहिये और स्मरण रखिये कि दुहते वक्त दूध हाथों को नहीं लगने पावे।

५२ गौ-दोहन के वक्त बिल्ली, कुत्ते आदि प्राणियों को वहां से भगा देना चाहिये।

५३ यदि किसी कारण से दूध का कुछ अंश खराब हो जावे तो उतना ही अंश न फेंककर सारे दूध को फेंक देना चाहिये।

५४ गौ को दुहने के बाद शीघ्र ही किसी दूसरे घर में ले जाना चाहिये। जो साफ सुथरा हो और जिसमें वायु स्वच्छन्दतापूर्वक आता हो।

५५ प्रतिदिन प्रत्येक गौ के दूध का वजन कर लेना चाहिये। और प्रति सप्ताह मक्खन का वजन देख लेना चाहिये।

५६ दूध में हाथ या अंगुली नहीं डालनी चाहिये। दुहने के बाद दूध को किसी स्वच्छ कपड़े से या किसी धातु के बर्तन से ढांक देना चाहिये।

५७ दूध को दुहकर फौरन दूध ठंडा कर देना चाहिये यदि उस दूध को बेचने के लिये भेजना हो तो ४५ डिग्री तक और यदि वहीं बेचना हो तो ६० डिग्री तक ठंडा कर देना चाहिये।

५८ दुहने के बाद जब तक दूध ठण्डा न हो जावे तब तक उस पात्र के मुँह को बंद नहीं कर देना चाहिये।

५९ यदि दूध को दुकान में रखना हो तो सूखे, साफ और हवादार मकान में ताजे पानी से भरे हुए हौज में दूध के बर्तन को रख देना चाहिये। इस मकान में मक्खियां न आने पावें। हौज का जल नित्य बदलना चाहिये। यदि क्रीम निकालना हो तो टिन के मन्थन यन्त्र द्वारा निकालना चाहिये।

६० रात के समय दूध को छाया में रखना चाहिये। गर्मी के दिनों में ठंडे पानी के चहबच्चे में रखना चाहिये।

६१ ताजा दूध को ठण्डा किये हुए दूध में कदापि नहीं मिलाना चाहिये।

६२ यदि दूध को कहीं भेजना हो तो स्प्रिंग वाले बर्तन में रखकर भेजना चाहिये।

६३ गर्मी के दिनों में यदि गाड़ी में रखकर दूध भेजना हो तो पात्र का मुंह गीले वस्त्र से या 'केनवस' (Canvas) से बन्द कर देना चाहिये।

६४ डेयरी के पात्रों का बाहिरी भीतरी भाग खूब साफ होना चाहिये। खास करके भीतरी भाग और जोड़ों की जगह खूब साफ होनी चाहिये।

६५ बाहिर से जो भी पात्र डेयरी में लौटें, उन्हें तत्काल साफ करा लेना चाहिये। इसी प्रकार खाली होते ही और पात्रों को पड़े रहने न देकर तत्काल ही साफ करा देने चाहिये।

६६ डेयरी के पात्रों को गरम पानी से धोकर सूर्य की धूप में सुखा लेना चाहिये। धोने के वक्त गर्म पानी में मैल साफ करने वाला कोई पदार्थ मिला लिया जावे तो अच्छा हो।

इत्यादि अनेक बातों का डेयरी-फार्म के संचालकों को ध्यान रखना चाहिये। यहां हमने संक्षेप में डेयरी-फार्म विषयक मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख किया है। भारतवासियों का ध्यान शीघ्र ही इस डेयरी के ढंग पर किये जाने वाले गो-पालन की ओर आकर्षित होना चाहिये। यदि उपरोक्त ढंग से डेयरी का कार्य चलाया जावे तो संचालक को अवश्य ही लाभ होगा। हानि की तो स्वप्न में भी सम्भावना नहीं। डेयरी-फार्म के कार्य में सफलता प्राप्त कर माला-माल हो जाने वाले मिस्टर केवेण्टर साहब का कथन है कि:—

" थोड़े से प्रयत्न से ही डेयरी के काम में खूब सफलता मिल सकती है। उक्त महाशय ने हिसाब लगाकर बताया है कि ९००) रु० की मशीनों की सहायता द्वारा २५ मन दूध की डेयरी चल सकती है।" S. Cyclopeadia of M. Agricalture Vol. 2 P. 5 में लिखा है कि:—

"A little more than a centuary has passed since the modest beginning of the present mommoth herds were made, the first Governor of the Batany bay Convict settlement, landing an initial consignment of stock, which included one Bull four Cows, one Calf, at the beginning of 1906, there were in the whole of Australia 8178000 head of cattle, the value of which was computed at £ 3485000.

अर्थात्—कुछ अधिक एक शताब्दि के पूर्व आस्ट्रेलिया के पहले गव्हर्नर ने चार गौएँ, एक बछड़ा और एक बैल खरीदकर गो-शाला (Dairy) स्थापित की थी। आज कल उस डेयरी में ८ लाख १७ हजार ४०० गौएँ हैं जिनका मूल्य लगभग ५१८७७५०००) रु० हैं। इसके अतिरिक्त बहुत सी गाएँ वहां से पृथ्वी के अन्य देशों के लिये भी भेजी गयीं।

इन उपरोक्त अवतरणों द्वारा डेयरी-फार्मों की उपयोगिता और सफलता अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है। इस समय

भारत में स्थान-स्थान पर बड़े रूस में चलने वाली डेयरी-फार्मों की अत्यंत आवश्यकता है आशा है भारतीय भाइयों का ध्यान इस ओर अवश्य जावेगा।

"डेयरी में गौओं के रहने के लिये गौ-शाला किस प्रकार की हो?" इस विषय पर भी यहां थोड़ा प्रकाश डालना वहुत जरूरी है पराशर-कृत कृषि-संग्रह में लिखा है कि:—

"गो शाला सुदृढायस्य शुचिर्गोमय वर्जिता।
तस्य वाहा विवर्द्धन्ते पोषणेर पिवर्जिता ॥८४॥
शकृन्मूत्र विलिप्तांगा वाहायत्र दिने दिने।
निःसरन्ति गवा स्थानात् तत्रकिं पोषणादिभि ॥८५॥
पञ्च पञ्चायत्तः शाला गवां वृद्धि करीमता।
सिंहस्थाने कृतासैव गौ-नाशं कुरुते ध्रुवम् ॥८६॥

अर्थात्— गो-शाला पचपन हाथ लम्बी बनवानी चाहिये। वह गोमय रहित हो। ऐसे ऊँचे स्थान पर गो-शाला निर्माण करनी चाहिये जहां हवा और प्रकाश भली-भांति आसके। सीले स्थान में गो-शाला कदापि नहीं बनवानी चाहिये। गो-शाला में गोमूत्र आदि निकलने के लिये नालियां बनवा देनी चाहिये। गौओं को वहां इस तरह बांधना चाहिये कि वे इधर-उधर घूमने न पावें तथा दूसरी गौओं से लड़ने न पावें। इसके लिये प्रत्येक दो गौओं के बीच में एक चार ऊंची

जालीदार, जिसमें से हवा आ जा सके—दीवार बनवा देनी चाहिये। एक गौ के लिये उठने-बैठने तथा हिरने-फिरने के लिये गौ-शाला में काफी जगह छोड़नी चाहिये। गो-शाला उत्तर-दक्षिण की ओर लम्बी बनवानी चाहिये, जिसमें दो बड़े-बड़े द्वार हों। पूर्व-पश्चिम वाली दीवारों में लोहे के तार वाली खिड़कियां होनी चाहिये जिनसे हवा और प्रकाश अच्छी तरह गौ-शाला में आसके। इस गौ-शाला में गौओं को पूर्व-पश्चिम मुख करके दो कतारों में बांधना चाहिये। बीच में डेढ़ या दो फुट चौड़ी एक नाली होनी चाहिये जिसमें गोबर और मूत्र गिरता रहे। इस नाली को साफ रखने के लिये एक पानी का बड़ा नल लगा होना चाहिये, जिसे आवश्यकता पड़ने पर खोलकर नाली साफ की जा सके। इस प्रकार बांधने से गौओं का सिर दीवारों की ओर रहेगा। यदि चाहे तो गौओं को इस प्रकार भी बांधा जा सकता है कि उनका पिछाड़ी का भाग दीवारों की ओर रहे तथा सिर आमने सामने रहे। ऐसा करने के लिये बीच में एक ४ फुट ऊंची दीवार बनवानी पड़ेगी। तथा गोबर गौ-मूत्र आदि साफ करने के लिये दोनों दीवारों के सहारे दो नालियां बनवानी पड़ेगी। हमारे विचार से गौओं को इस प्रकार बांधना ठीक नहीं है। क्योंकि इससे गौओं को श्वासोछ्वास के लिये शुद्ध वायु न मिलकर एक दूसरी गौ के त्यागे हुए सांस में सांस लेना पड़ेगा। आपस में स्पर्द्धायमान रहकर लड़ने का अन्देशा

रहेगा। मूत्र गोबर आदि के छींटे उड़कर दीवारें हमेशा मैली रहेंगी इत्यादि। डेयरी के संचालक को जिसमें सुविधा हो उसी तरह करना चाहिये।

गौओं को खाने के लिए मिट्टी, काठ, टीन अथवा किसी धातु के पात्र में देना चाहिये। इनमें सब से सस्ता लकड़ी का टब बन सकता है किन्तु उसकी सफ़ाई अच्छी प्रकार नहीं हो सकती। मिट्टी का टब और भी सस्ता होता है किन्तु मजबूत नहीं होता। हां यदि उसे जमीन में गाड़ दिया जावे तो मजबूत हो जाता है। ये टब गौ की छाती के बराबर ऊँचे रहने चाहिये। टब में एक छेद रखना चाहिये, जिससे कि उसे धोकर गँदला पानी निकाल देने में सहूलियत रहे। टब प्रतिदिन धो-पोंछकर शुद्ध कर देना चाहिये।

प्रत्येक गौ के लिये कम से कम चार हाथ चौड़ी और चार हाथ लम्बी जगह होनी चाहिये। प्रत्येक गौ के टब के ऊपर एक एक पानी की कल लगादी जावे तो बहुत ही अच्छी बात हो। गौशाला का मैदान, गौओं के रहने का स्थान तथा नाली वगैरा खूब शुद्ध रखनी चाहिये। गोमूत्र और गोबर जैसी वस्तुओं को गोशाला में अधिक देर तक नहीं पड़ी रहने देना चाहिये। फीनाइल अथवा कार्बोलिक पाउडर से गौशाला की नाली प्रतिदिन धो डालनी चाहिये। गौओं को रस्सी से इस भांति बांधना चाहिये कि उन्हें उठने बैठने में किसी तरह का कष्ट न हो। अगर गले में रस्सी बांधना हो तो उनके गले

में भँवरकड़ी डाल रखना चाहिये ताकि रस्सी अपने आप यथोचित घूमती रहे। इससे पशुओं के गले में फँदा लग जाने का डर नहीं रह जाता। बैल, बड़े बछड़े तथा सालभर की बछिया भी इसी प्रकार बांधी जानी चाहिये। सांडों को गौओं से हमेशा अलग जगह में बन्द रखना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर ही उन्हें गौओं से मिलाना चाहिये। छोटे-छोटे बछड़े-बछड़ियों के लिये एक अलग जगह रहनी चाहिये। गौओं का दूध दुहने के लिये, घास चारा रखने के लिये, सांड के संयोग के लिये तथा प्रसव के लिये अलग-अलग स्थान होने चाहिये जिसमें गाएँ विश्राम कर सकें। गौ-शाला सम्बन्धी वस्तुओं को रखने के लिए एक अलग जगह होनी चाहिये। गौशाला के पास ही ग्वालों के रहने का स्थान होना चाहिये। प्रत्येक डेयरी में एक गौ-चिकित्सक अवश्य होना चाहिये।

डेयरी प्रकरण में ही गो-दोहन विषय पर भी विचार करना चाहिये। हमारे देश में सभी दुधारू पशुओं का दूध हाथ से दुहा जाता है। किन्तु पाश्चात्य देशों में अब मशीनों की सहायता से दूध दुहने का कार्य किया जाता है। इग्लैंड आदि देशों में जहां दूध दुहने के पहले बच्चा नहीं लगाया जाता, वहां पहिले गौ के थन को पानी से धोकर फिर कपड़े से अच्छी तरह पोंछ लेते हैं, तत्पश्चात् दुहना शुरू करते हैं। परन्तु हमारे देश में पहिले उस दूध के सच्चे अधिकारी उसके बच्चे को कुछ दूध पी लेने दिया जाता है। इससे दूध बड़ी आसानी से

उतरता है। गौ के बाईं ओर बैठकर दुहना चाहिये। गौएँ दो तरह दुही जाती हैं एक मुट्ठी से और दूसरे अँगूठे तथा पहिली अँगुली से।

मशीन के द्वारा गो-दोहन करने से, दूध में किसी प्रकार का मैल अथवा कीटाणु प्रवेश नहीं होने पाता! इसी कारण योरोप के लोग यंत्रों से दूध निकालते हैं। मशीनों का दाम अधिक होता है और साथ ही भारतीयों को उसका अभ्यास भी नहीं है और गोओं को भी उसका अभ्यास कराना कठिन है। कलों के द्वारा दूध दुहने में बच्चों की आवश्यकता नहीं पड़ती किन्तु हमारे देश की गौएं बच्चे को सामने देखे बिना दूध ही नहीं देतीं। अतएव हमारे देश की डेयरियों में दूध दुहने के यंत्रों की आवश्यकता नहीं है—दूध हाथों से ही दुहा जाना चाहिये।

अमेरिका के न्यूयार्क नगर में पहिले-पहिल मशीन लगाकर दूध दुहने की चेष्टा की गई। परन्तु असम्भव समझकर इस विषय को छोड़ दिया गया। यह उन्नीसवीं शताब्दी की बात है। इसके बहुत दिन बाद मेयर नामक एक अंग्रेज ने दूध दुहने की एक मशीन तैयार की। इसे सफलता मिली। बाद में अमेरिका, जर्मनी, स्वीडन और डेन्मार्क आदि देशों में भी दूध दुहने की मशीनें तैयार हुईं। किन्तु कलें बड़ी ही जटिल थीं इस कारण सर्व-साधारण लोग उसे असुविधाजनक समझकर काम में नहीं लाते थे। इसके बाद इस प्रकार की

कलों का प्रयोग छोड़ दिया गया और वायु निष्काशन प्रणाली से दुहने की कल तय्यार की गई। स्कॉटलैण्ड वालों ने इसमें विशेष उन्नति की इस प्रणाली द्वारा स्कॉटलैन्ड के मार्चलैण्ड सा० ने सन् १८८९ में और निकलसन ने सन् १८९१ में गो-दोहन का यंत्र बनाया। परन्तु इस प्रकार के दोहन से पशु के थनों में रक्त संचालन में गड़बड़ होने लगी तथा उनका स्तन भाग कमजोर होकर सिकुड़ने लगा। इसलिये सन् १८९५ में डॉक्टर लिण्ड ने एक दूसरी कल बनाई, किन्तु कई कारणों से यह भी उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकी। इसके बाद ग्लासगो के केनेड़ी और लारेन्स नामक व्यक्तियों ने बड़े परिश्रम के बाद "कनेड़ी लारेन्स यूनीव्हर्सल मिल्कर" नामक कल तय्यार की। सन् १९०७ में वेल्स नामक अंग्रेज ने उसी ढंग की एक और भी अच्छी मशीन बनाई। इन कलों के द्वारा एक समय में दो पशु पांच सात मिनिट में अच्छी तरह दुहे जा सकते हैं। कलों के द्वारा बहुत चेष्टा करने पर भी थनों में से समस्त दूध नहीं दुहा जा सकता। यदि गौ के स्तनों में से सम्पूर्ण दूध नहीं निकाला जावे तो उसके थनों में शेष दूध जमकर अनेक तरह की बीमारियां उत्पन्न कर देता है। इसलिये कल के द्वारा दुहने पर भी पहिले और पीछे हाथों द्वारा दूध दुहा जाता है। मशीन द्वारा दुहने से एक बड़ी भारी हानि यह होती है कि, गौ शीघ्र ही दूध देने से हट जाती है और उसके दूध के मक्खन का भाग कम हो जाता है।

अभी हाल में इंग्लैण्ड वालों ने "ओमेगा" नामक एक अच्छी मशीन तय्यार की है। यह सब यंत्रों से अच्छी समझी गई है। इसके बनाने वाले को प्रदर्शिनियों द्वारा पुरस्कार भी मिला है। यदि कोई डेयरी का स्वामी मशीन का उपयोग करना चाहे तो इसी मशीन को मंगाकर परीक्षा कर सकता है।

दोहन कार्य जितना शीघ्र और हलके हाथों द्वारा धैर्य-पूर्वक किया जावे, उतना ही अच्छा है। पहिले इस भारतवर्ष में इतने दक्ष दुहने वाले होते थे कि बांह पर तेल भरी कटोरियां रखकर गौ दुह लेते थे परन्तु कटोरी में से एक बूंद भी तेल नहीं गिरता था। दुहते वक्त गौ को मारना-पीटना या झिड़कना नहीं चाहिये। दुहते वक्त गौ को किसी तरह का कष्ट न पहुंचे इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये। गौ-दोहन का समय मुकर्रर होना चाहिये और नित्य उसी समय उसे दुहना चाहिये। दोहक भी एक ही होना चाहिये, आज कोई और परसों कोई—ऐसा नहीं करना चाहिये। स्तन के कर्रा होने पर उन्हें घी या तेल लगाकर मुलायम कर लेना चाहिये। भारतीय गौएं बच्चे को सामने देखकर ही दूध देती हैं, परन्तु यूरोप और अमेरिका में बच्चे को अलग रखकर दूध दुहने की प्रथा है। डेयरी वालों को भी ऐसा अभ्यास कर लेना चाहिये— क्योंकि यदि बच्चा मर जावेगा तो गाय दूध नहीं देगी और इससे डेयरी को हानि पहुंचेगी।

डेयरी की गौओं को स्नान अवश्य कराना चाहिये। इसके लिये पास में कोई उत्तम तालाब या अच्छी नदी होनी चाहिये। वास्तव में डेयरी खोलना ही ऐसी जगह चाहिये, जहां जल बिना किसी कष्ट के सहज ही में विपुलता से मिल सके। गौओं को गर्मी के मौसिम में प्रति सप्ताह या सप्ताह में दो बार अच्छी तरह स्नान कराना चाहिये। वर्षाऋतु में भी हर हफ्ते स्नान करा देना चाहिये और शीत-काल में जिस दिन अच्छी धूप हो उसी दिन महीने में एक बार न्हिलाना चाहिये। न्हिलाने के बाद गौ के शरीर को किसी सूखे वस्त्र से पोंछ डालना चाहिये। गौ को सर्दी थनों के द्वारा लग जाने का अन्देशा रहता है इसलिये दूध देने वाली गाय के थनों को ठंडे पानी से अधिक नहीं धोने चाहिये और न उन्हें अधिक समय तक धोने ही देने चाहिये। गौ के शरीर में शीत न प्रवेश हो जावे इस बात का ध्यान बहुत रखना चाहिये।

गौओं की मालिश भी नित्य नियम पूर्वक करना चाहिये। उनका शरीर नित्य ब्रश द्वारा साफ कर देना चाहिये। बहुत से क्षुद्र जन्तु गौ के शरीर से चिपटकर उसका रक्त चूसते रहते हैं—ब्रश से शरीर साफ कर दिया जावे तो ये कीड़े पैदा नहीं होने पाते। गौएं जितनी जल्दी प्रसन्न होती हैं, उतनी ही जल्दी वे नाराज भी हो जाती हैं। इन कीड़ों के शरीर में पड़ जाने से वे दूध कम देने लगती हैं। इन कीड़ों के निकाल

देने से गौएं अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। गायों को प्रतिदिन झाड़ते-पोंछते रहने से वे बहुत खुश होती हैं और उनके मन में स्वच्छन्दता आती है। स्मरण रहे कि गौओं के खुश रहने से दूध अच्छा और अधिक होता है और उनके नाराज रहने पर दूध पर बुरा परिणाम होता है।

गौएं अपने शरीर को चाटकर साफ रखती हैं और खुजाल सकती हैं किन्तु गले को नहीं चाट सकतीं। इसी कारण जब उनका गला सहलाया जाता है तो वे परम प्रसन्न होती हैं। यदि गौ को खुश और अपने वशीभूत रखना हो तो उनके गले को सहलाना चाहिये।

गौओं के लिये व्यायाम भी बहुत जरूरी है। ऐसा न हो कि कहीं गौशाला गौओं के लिये जेलखाना बन जावे! गौओं को प्रतिदिन चरागाह में चरने के लिये छोड़ना ही उनके लिये यथेष्ट व्यायाम है। वहां वे इच्छानुसार दौड़-भागकर व्यायाम करलेती हैं। एक जगह बँधी रहने वाली गौ जो व्यायाम नहीं लेती, रोगिणी हो जाती है, और उसका दूध भी रोगोत्पादक हो जाता है। बैलों को व्यायाम कराना बहुत ही जरूरी है। नहीं तो थोड़े ही दिनों में उनके पेट में चर्बी बढ़ जाती है जिससे वे निकम्मे हो जाते हैं। अतएव उन्हें प्रतिदिन व्यायाम कराना चाहिये। बैलों को मैदान में गौओं के साथ नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि बैलों का स्वभाव क्रोधी होता है।

वे कभी-कभी पशुओं पर तथा मनुष्यों पर व्यर्थ ही आक्रमण कर बैठते हैं और उन्हें घायल कर देते हैं।

गौओं को यथेष्ट विश्राम मिले इसके लिये विशेष ध्यान रखना चाहिये। दुधारू गौओं के विश्राम में यदि किसी प्रकार की बाधा पहुँचेगी तो वे दूध कम देने लगेंगी। दुधारू गौ का स्वभाव अत्यन्त मृदु होता है। रात के वक्त मच्छर उनकी नींद में खलल न डालें इस बात का पालक को बहुत ध्यान रखना चाहिये। यदि गौ को विश्राम नहीं मिलेगा तो उसका दूध घट जावेगा। दोपहर का भोजन देने के पश्चात् गौओं को ठंडे स्थान में विश्राम देना चाहिये। यदि वृक्ष हो तो ठीक अन्यथा उनके दोपहरी में बैठने के लिए जहां-तहां छप्पर बनवा देने चाहिये। जहां वे बैठकर प्रसन्नता पूर्वक अपने खाये हुए पदार्थ का पुनः चर्वण अर्थात् पागुर—जुगाली कर सकें। सायंकाल को खुराक देने के बाद उनके सोने का प्रबन्ध कर देना चाहिये अर्थात् रद्दी घास का बिछौना कर देना चाहिये जिस पर वे बैठकर पागुर करती हुई सो जाती हैं। शीत और वर्षाऋतु में गौओं के नीचे चटाई या पवाल बिछा देना चाहिये। मच्छरों से बचाने के लिए बोरे या टाटों की मसहरी लगाना चाहिये। मच्छरों को दूर करने के लिये गौशाला के द्वार पर धुआँ कर देना चाहिये और एक बार नहीं बल्कि रात में दो-तीन बार धुआँ करना चाहिये। गौओं के सींगों में

तथा खुरों में सरसों का तेल लगा देने से मच्छरों का जोर घट जाता है तथा उन्हें सरदी भी कम लगती है। तुलसी के पत्तों का रस गौ के शरीर में लगा देने से भी मच्छर नहीं काटते। गौशाला के आसपास तुलसी तथा एरण्ड के दरख्त लगाने से भी मच्छर कम आते हैं।

हमने यहां संक्षेपतः डेयरी के विषय में लिखा है। जिन्हें इस विषय में अधिक जानने की इच्छा हो उन्हें म० ईसा द्विड़ की लिखी हुई "Cow Keeping in India" नामक पुस्तक पढ़नी चाहिये। अथवा "Dairy farming in India" नामक पुस्तक पढ़ लेनी चाहिये। जिन्हें डेयरी खोलना हो वे पुस्तकीय ज्ञान तो प्राप्त कर ही लेंगे किन्तु साथ ही उन्हें अनुभव प्राप्त करने की भी आवश्यकता है। इसके लिये किसी अच्छी डेयरी में कुछ दिन रहना चाहिये। हो सके तो योरोप की किसी प्रसिद्ध डेयरी में जाकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जिस भारत में गौ को माता कहा जाता है, जिसके महात्म्य में वेद पुराणों के पृष्ट रंगे पड़े हैं, जो भारत का जीवन धन माना जाता है, जिसके नाश के साथ ही देश का नाश है और जिसकी उन्नति में ही सब सुख मौजूद है, उसी गौ-वंश का यहां धीरे-धीरे नाश हो रहा है। किन्तु समस्त यूरोप के न सही केवल इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध नगर लन्दन के आस पास एक सौ पचास मील के अन्दर कोई ५००० से अधिक डेयरी

कम्पनियां हैं—प्रतिदिन दस लाख गैलन दूध वहां बाहर से आता है !!! हमारे यहां प्रयत्न इस बात का होना चाहिये कि प्रत्येक एक-एक गौ अपने घर में अवश्य रखें। गोचर-भूमि के अभाव से, अथवा अन्य असुविधाओं के कारण जिन नगरों में गौएँ रखना कष्ट साध्य हो, वहां अवश्यमेव डेयरी फार्म खोलकर दूध घी की आवश्यकता पूरी की जानी चाहिये।